चरण सिंह, १९०२-१९८७: एक मूल्यांकन

टेरेंस जे0 बायर्स[1]

चरण सिंह (१९०२-८७) को निरंतर भारतीय किसानों के हिमायती के रूप में पहचाना जाता रहा है। यह परिचय उनके लम्बे राजनीतिक जीवन का संकेतक है। उनके लेखन की बहुत कम लोगों को जानकारी है। अव्वल तो उनका जिक्र होता नहीं, यदि कभी होता भी है, तो उसका स्वर (विशेषकर शहरी बुद्धिजीवियों को दृष्टि में रखते हुए) अस्वीकारात्मक होता है। यहां सर्वप्रथम यह तर्क प्रस्तुत किया गया है कि चरण सिंह वास्तव में एक कुशल राजनीतिज्ञ थे परन्तु उन्होंने समूचे कृषक वर्ग के हितों की अपेक्षा केवल धनी एवं मध्यम वर्ग के किसानों का प्रतिनिधित्व किया। दूसरे, यह माना जाता है कि उनका प्रकाशित लेखन, जितना अमूमन समझा गया है, उससे कहीं अधिक महत्वपूर्ण है और सही तौर पर वह नव–लोकरंजकतावाद की व्यापक परम्परा के अन्तर्गत आता है। वह असामान्य रूप से धनी एवं मध्यवर्गीय किसानों के सच्चे ''जैविक'' बुद्धिजीवी थे। उनके राजनीतिक जीवन और विचारों की ओर पहले से अधिक गम्भीर ध्यान देने की आवश्यकता है और इस काम के लिए पर्याप्त वर्गीय परिप्रेक्ष्य के अन्तर्गत होना चाहिए।

1. चरण सिंह : समुचित मूल्यांकन की आवश्यकता है

चरण सिंह का निधन पच्चासीवें वर्ष में 29 मई 1987 को सुबह के समय हुआ। शोक संदेशों में लिखा था कि वे भारत के पैंसठ करोड़ किसानों के हिमायती थे....कृषक कुलपति थे.. .. (बोस, 1987)। दरअसल यह वह छवि थी, जिसे चरण सिंह उभारना चाहते थे। भारत में उनकी यही छवि लोकप्रख्यात भी है। इस प्रकार के परिचय के तहत अक्सर उन्हें पैंसठ करोड़ किसानों का हिमायती समझा जाता रहा है।

यह छवि भ्रामक है। एक अर्थ में वे कृषक कुलपति थे। परन्तु परिचय का प्रथम भाग चरण सिंह की भूमिका और महत्ता को निरुपित नहीं करता। चरण सिंह के प्रति रुचि का उचित रूप में पर्याप्त औचित्य है। परन्तु इस रुचि के कारण वे नहीं हैं, जो उक्त शोक संदेशों में व्यक्त होते हैं। उनका जीवन महत्वपूर्ण, विविधरंगी और विवादास्पद रहा है। उनका जीवन उत्तर भारत के कृषक समाज के बीच शुरू हुआ था और शोक संवादों के अनुसार चरण सिंह इस गौरव से अभिभूत थे कि उनकी जड़ें कृषक परिवार में हैं (तत्रांत्रिक)। यह गौरव उचित ही है, यद्यपि चरण सिंह स्वयं कृषिकर्मी नहीं थे। वे पहले वकील बने फिर राजनीतिज्ञ। फिर भी उनका जीवन आंतरिक एवं अभिन्न रूप से पश्चिमी भारत के कृषक समाज और उसके कुछ महत्वपूर्ण हिस्सों से जुड़ा हुआ था। वे उनके राजनैतिक प्रतिनिधि, उनके प्रवक्ता और वैचारिक नेता के रूप में सामने आये थे।

अतः क्षेत्रीय स्तर पर उनकी पहचान महत्वपूर्ण है। यह ठीक है कि अंततः उनके स्वर में समूचे भारतवर्ष के किसानों का पक्ष ध्वनित हुआ और यह भी कम महत्वपूर्ण नहीं है कि वे

---

[1] ऑथिक और राजनीतिक अध्ययन विभाग, ओरएिंटल एंड अफ्रीकन स्टडीज स्कूल, लंदन वश्विवद्यालय, ब्रीटान्नीअ । नोटः १३९-१८९ - मार्क्सवादी शैक्षणिक टेरेंस बॉयर्स ने एक किसान अध्ययन के जर्नल जर्नल ऑफ़ पेसेंट स्टडीज में १९८८ में यह अध्याय प्रकाशित किया। सभी कॉपीराइट टेरेंस बॉयर्स तथा जर्नल ऑफ़ पेसेंट स्टडीज के हैं।

भारतवर्ष के अल्पकालिक प्रधानमंत्री बने। इतना ही नहीं, 1947 के बाद के भारत की राजनीतिक अर्थनीति के साथ उनका जीवन महत्वपूर्ण रूप से जुड़ा हुआ था। दूरगामी परिणामों की दृष्टि से राष्ट्रीय होते हुए भी यह महत्व मूल रूप से क्षेत्रीय था। उनके जीवन के बुनियादी तत्व थे– स्थानीय जड़ों की शक्ति और क्षेत्रीय आधार का बल, जबकि राजनीतिज्ञ के रूप में उनकी सभी प्रमुख उपलब्धियां क्षेत्री थीं। उनके विचारों का आग्रह क्षेत्रीय सीमाओं को पार करने वाला था। उनकी वैचारिक विशालता की सुदृढ़ समानांतरताओं को भारत के बाहर भी खोजा जा सकता है, परन्तु उनकी विचारधारा की विशिष्ट निर्मिति एवं तदनुरूप आवर्ती उदाहरणों की जड़ें भारत के उत्तर–पश्चिमी क्षेत्र की ठोस परिस्थितियों में थीं। यह उनकी वैचारिक शक्ति का एक हिस्सा है।

अतः कृषक समाज के बीच उनकी स्थिति के प्रति आग्रह अत्यंत महत्वपूर्ण है। समूचे भारत के किसानों के लिए उनका महत्व था पर इतना नहीं जितना उक्त शोक संवाददाता ने सूचित किया है। यह महत्व, उनके दूसरे प्रकार की वैचारिक उद्घोषणाओं के बावजूद, इस बात से अनुस्यूत नहीं है कि वे समूचे कृषक वर्ग के हिमायती थे, अपितु इस बात से है कि वे कृषक समाज के विशिष्ट तबकों के समर्थक थे। उनके राजनैतिक आचरण ने विभिन्न तरीकों से सभी ग्रामीण वर्गों तथा किसानों के समस्त तबकों को अपरिहार्य रूप से प्रभावित किया परन्तु उनके इस हिमायती रुख से समस्त ग्रामीण वर्ग लाभान्वित नही हुए। उक्त शोक संवाद में वर्तमान प्रधानमंत्री राजीव गांधी को यह कहते हुए उद्धृत किया गया है कि चरण सिंह गरीब ग्रामीणों के प्रति अपनी अनन्य निष्ठा के कारण याद किये जायेंगे। (बोस, १९८७)। परन्तु गरीब ग्रामीण उनके राजनीतिक हस्तक्षेप के लक्ष्य कदाचित ही रहे होंगे। दूसरी ओर बहुसंख्यक निर्धन ग्रामीणों की समस्याओं से निपटने के लिए उनके पास कोई भी ठोस समाधान नहीं था।

चरण सिंह पर यह आत्मकथात्मक मूल्यांकन राजनैतिक अर्थनीति की दृष्टि से प्रस्तुत किया गया है। अन्यत्र चरण सिंह पर विभिन्न तरीकों से लिखा और जांचा जायेगा। यहां राजनैतिक अर्थनीति की दृष्टि से ही उन पर विचार हुआ है– उस पर भी कृषिक मुद्दे जैसे अत्यंत संगीन संदर्भ में। ऐसा करने के लिए समुचित वर्गीय परिप्रेक्ष्य की आवश्यकता है। इसी विधि में निहित है चरण सिंह के महत्वोद्घाटन की कुंजी। उनकी मृत्यु के अवसर पर ऐसा मूल्यांकन स्वभावतः प्रारंभिक और आंशिक होगा। पूर्ण और संतुलित मूल्यांकन के लिए विस्तृत और सुविचारित अध्ययन की आवश्यकता है। उनका महत्व और वह असामान्य प्रकृति जिसे उन्होंने मूर्तित किया, ऐसे तत्व हैं, जिनके आधार पर उनके गम्भीर मूल्यांकन की तत्पर आवश्यकता है, भले ही वह अपरिपक्व ही क्यों लगे।

चरण सिंह अनेक दृष्टियों से असाधारण व्यक्ति थे। इस निबंध में कुछ की पहचान विस्तार से की जायेगी। किन्तु सबसे पहले उनकी उन स्पष्ट विशेषताओं पर ध्यान जाता है, जिन्हें लेकर इस निबंध का ताना–बाना तैयार किया गया है। इस निबंध के दौरान उन पर विस्तृत चर्चा की जायेगी।

सर्वप्रथम वे असामान्य रूप से सफल राजनीतिज्ञ थे और अपनी जन्मभूमि उत्तर प्रदेश में कृषि मोर्चे पर अत्यंत ख्यातिपूर्ण तरीके से काम करने पर उन्हें अद्भुत सफलता मिली। दूसरे, 1947 और 1986 के बीच उन्होंने पर्याप्त और ठोस लेखन कार्य किया (इस निबंध की संदर्भ सूची में पूरी लिस्ट देखें) जिसके अन्तर्गत संगत एवं व्यापक विचारों के आधार पर

उन्होंने ग्रामीण भारत की प्रकृति को दर्शाते हुए उस पथ को प्रशस्त किया है, जिस पर ग्रामीण भारत को अग्रसर होना चाहिए। वे सही मायने में बड़े काम के बुद्धिजीवी थे। उन्होंने अपने लेखन के जरिये विश्लेषण और समाधान का सशक्त सम्मिश्रण प्रस्तुत किया। उस पर भी कृषि मुद्दे में रुचि रखने वाले राजनैतिक अर्थनीति के विशेष का विशेष ध्यान जाना चाहिए। सक्रिय राजनीतिक जीवन की अनुपस्थिति में भी ऐसा किया जा सकता है। तीसरे, उनके पास एक ऐसी खूबी थी जिसके आधार पर वे राजनैतिक कर्म के साथ बौद्धिकता को समन्वित करके विचारों का सहज संप्रेषण कर सकते थे।

किसी विकासमान ऐतिहासिक स्थिति में राजनैतिक आचरण और विचारधारा दोनों की परस्पर व्याप्ति सम्भव है। विचारधारा को राजनैतिक आचरण तथा उसके तहत आये परिवर्तनों के औचित्य को सिद्ध करने के काम में लाया जा सकता है और विचारधारा के द्वारा ऐसे परिवर्तनों के निहितार्थों को छिपाया जा सकता है तथा भावी राजनैतिक कर्म को संकेतित किया जा सकता है। विचारधारा के अर्थोद्घाटन के लिए वर्गीय विश्लेषण की आवश्यकता है, क्योंकि वर्तमान कृषिक ढांचे में वर्गिक निहितार्थों का ही मुख्य स्थान है, क्योंकि जो भी परिवर्तन कृषिक ढांचे में और उत्पादक शक्तियों के तहत होंगे उन्हें छिपाया और तोड़ा–मरोड़ा जा सकता है। राजनैतिक व्यवहार अन्य प्रकार के हस्तक्षेपों और प्रभावों के साथ वैचारिक परिवर्तन ला सकता है। हालांकि यह आवश्यक नहीं है कि ऐसा प्रत्यक्ष गति से हो। दोनों परस्पर घात–प्रतिघात संश्लिष्ट, विभिन्न निर्णायक भूमिकाओं वाला, विरोधात्मक तथा अज्ञात परिणाम वाला हो सकता है। चरण सिंह के आकर्षक व्यक्तित्व की एक खूबी यह थी कि जैसे–जैसे उक्त घात–प्रतिघात एक ही स्थिति के अन्तर्गत व्यक्त होता जाता था, उन्हें उसकी पूर्ण जानकारी होती थी।

II मूल सामाजिक पृष्ठभूमि और आरम्भिक प्रभाव स्रोत

चरण सिंह का जन्म २३ दिसम्बर १९०२ के दिन पश्चिमी उत्तर प्रदेश (ब्रिटिश कालीन भारत का यूनाइटेड प्रॉविन्सेज या संयुक्त प्रांत) के मेरठ जिलान्तर्गत नूरपुर गांव में हुआ था (सिंह, 1986 : 1)। किसी अनाम वार्ताकार (तत्रांकित) के माध्यम से उन्होंने बताया कि किसी व्यक्ति के तौर–तरीके, विचार और प्रवृत्तियां उसकी सामाजिक पृष्ठभूमि के अनुरूप उत्पन्न होते हैं। यही बात चरण सिंह पर भी लागू होती है। चरण सिंह के सम्बंध में दोनों बातों को स्वीकृत किया जा सकता है– (संस्कारों) सम्बंधी सामान्य धारणा या उनका विशिष्ट उपयोग। संगत सामाजिक पृष्ठभूमि के निर्धारक तत्वों के बारे में विवाद हो सकता है।

चरण सिंह आग्रहपूर्ण तरीके से कहा करते थे कि उनका जन्म एक किसान के घर में हुआ था जिसकी दीवारें मिट्टी की और छत फूस की छाई हुई थीं। घर की चारदीवारी के अन्दर ही एक कुऑं था, जिसका पानी पीने और सिंचाई के काम आता था (तत्रांकित)। यह जानकारी सही है। उनकी सामाजिक पृष्ठभूमि के अन्य पक्षों का उनके तौर–तरीकों, विचारों और प्रवृत्तियों को ढालने में एक समान या उससे अधिक महत्व हो सकता है। यहां पर दोनों प्रकार की बातों पर विचार किया जा सकता है– उस समुदाय की निश्चित आनुवांशिक विशेषताएं, जिसमें चरण सिंह पैदा हुअए हौर उनके परिवार की विशिष्ट परिस्थितियां। सामान्य परिवेश में पले सामान्य परिवार के कृषक पुत्र की छवि की अपेक्षा चरण सिंह से सम्बद्ध वास्तविकता एकदम से अधिक संश्लिष्ट है।

कृषक मूल की उनकी स्थिति निश्चित रूप से विशुद्ध है। उनका जन्म हिन्दू जाट परिवार में हुआ था। ये जाट कृषिकर्मी या किसान हैं। उत्तरी भारत में ये सिख हैं या हिन्दू। सिख जाट पंजाब में केन्द्रित हैं और हिन्दू जाट पश्चिमी उत्तर प्रदेश तथा हरियाणा में। भारत के कृषिकर्मी समुदायों में शारीरिक श्रम के सम्बंध में विभिन्न विधियां व्याप्त हैं। सिद्धांततः सभी अपने खेत खुद जोतना चाहते हैं। परन्तु जिनकी माली हालत सुधर जाती है उनमें यह प्रवृत्ति कम होती जाती है। उदाहरणार्थ पश्चिमी बंगाल के सद्गोप या तमिलनाडु के बल्लाल के पास यदि तीन या चार एकड़ भूमि हो तो वे खेती का सारा काम स्वयं नहीं करते (1974ए : 191)। पर जाटों में ऐसा नहीं होता उत्तर भारत के जाट खुदकाश्त करने वाले किसानों के आदर्श उदाहरण हैं। पश्चिमी उत्तर प्रदेश और हरियाणा के जाट आर्थिक रूप से समुन्नत होने के आवजूद खेती सम्बंधी लगभग सारा काम स्वयं करते हैं। (तत्रांकित)। और भी जैसा कि अन्यत्र नहीं पाया जाता, इन जाट परिवारों की औरतें भी खेतों में काम करती हैं। (बेते 1974बी : 53)। चरण सिंह ने विशुद्ध किसान परम्परा के संस्कार प्राप्त किये।

अन्य किसानों की तरह जाटों के मध्य भी भौतिक परिस्थितयों की विविधता देखी जा सकती है। यह स्पष्ट है कि बीसवीं शताब्दी के आरम्भ में जाट समुदाय या जाट किसानों में एकरूपता नही थी। तब वे स्पष्टतः अलग–अलग थे। हालांकि जाति, गोत्र आदि के प्राचीन सूत्रों से वे जुड़े हुए थे [अलावी (1973), इस सामान्य निरूपण का सम्बंध जाटों से नहीं है, परन्तु वर्ग सम्बंधों वर्ग निर्माण की प्रक्रियाओं और वर्गाधारित कार्य व्यापार के प्रति सतर्क रहने की आवश्यकता है; वरना ये सभी विशिष्ट विचार सरणियों तथा अनवरत वैचारिक आग्रहों के कारण रहस्यमय या अव्यक्त स्थितियों में पड़े रहेंगे। चरण सिंह ऐसी सरणियों तथा आग्रहों के नियन्ता बनने जा रहे थे।

जाट किसान की प्रवृत्ति है कि वह भू–स्वामी बने। परन्तु बीसवीं शताब्दी के आरम्भ में न तो सभी जाट भू–स्वामी थे और न आज हैं। वस्तुतः चरण सिंह जब पैदा हुए उस समय उनके पिता उन पांच भाइयों में सबसे छोटे थे, जो समीपवर्ती गांव कुचेसर के किसी बहुत बड़े जमींदार की भूमि जोतते थे (सिंह, 1986 : 1) निश्चित रूप से जाटों में भू–स्वामित्व के आदर्श के प्रति उत्कट लगाव है। यह बात महत्वपूर्ण है। इस बात के तहत जमींदार वर्ग और विशेषतः ऐसे बड़े जमींदारों के कार्य के प्रति गहन विरोध व्यक्त हो सकता है, जिसने चरण सिंह के परिवार को उनके जन्म के समय काश्तकारी पर जमीन दी थी। यह विरोध धनी और मध्यवर्गीय किसानों में, चाहे वे काश्तकार (टेनेंट) रहे हों या नहीं– उतना ही तीव्र हो सकता है, जितना गरीब किसानों में। चरण सिंह में निश्चित रूप से इस विरोध की भावना थी।

वस्तुतः चरण सिंह के जन्म के छह महीनों के अन्दर ही उनका परिवार मेरठ जिले के अंदर ही उनके जन्म स्थान से 25 मील दूर जानी खुर्द नामक गांव में भू–स्वामी बन गया था (सिंह 1986 : 1)। उनके दो चाचाओं ने उस धन से दस एकड़ भूमि खरीद ली थी, जो उन्होंने ब्रिटिश इंडियन आर्मी के सिपाहियों के रूप में अर्जित किया था (तत्रांकित)। बाद में उस जमीन को पन्द्रह एकड़ (छह हेक्टेयर) तक बढ़ा लिया गया (नायक, 1979 : 31), उसमें चरण सिंह के परिवार की स्थिति धनी कृषक वर्ग के निचले स्तरों तक पहुंच गई होगी। उनके नाम के साथ बहुधा **कुलक** शब्द जोड़ा जाता था, जिससे उन्हें सख्त नफरत थी और इस शब्द को दृढ़तापूर्वक नकारने में वे देर नहीं लगाते थे। परन्तु इस प्रकार के मूल की बात पश्चिमी उत्तर

प्रदेश के उद्यमी और सम्पन्न किसानों के बीच बड़े महत्व की थी। उत्तरी भारत के धनी एवं मध्यवर्गीय किसानों के प्रति उनकी सहानुभूति गहरी एवं आग्रह शक्तिशाली था।

कृषि श्रम की भागीदारी तो आम बात है। यदि जाट किसानों के लिए भू–स्वामित्व आदर्श स्थिति है तो खेतिहर मजदूरों का जीवन अभिशाप बनकर रह गया है। जैसा कहा गया हैए ''उत्तर भारत के जाटों की हालत चाहे कितनी खस्ता क्यों न हो, वे बटाईदार की हैसियत पसंद करेंगे परन्तु खेतिहर मजदूर कभी न बनेंगे।'' (बेते 1974 ए : 84)। भूमिहीन मजदूर बनना और अस्तित्व के लिए दूसरों के लिए श्रम करना अपमानजनक स्थिति है। यहां पर चरण सिंह की सामाजिक पृष्ठभूमि का एक महत्वपूर्ण तत्व है जो उनके तौर–तरीकों, विचारों और प्रवृत्तियों में बड़ी गहराई से अंकित था।

चरण सिंह खासकर के उन बड़े जमींदारों और व्यापारियों, जो महाजन थे, के प्रति वैमनस्य की भावना को लेकर बड़े हुए होंगे। [उद्धृत, ह्विटकोंब (1972 : च, 4), विशेषतः 163–4 और 167.8]। इस पर चरीण सिंह के जन्म तक यूनाइटेड प्रॉविन्सेज के लिए); और व्यापारियों के लिए [उद्धृत, ह्विटकोंब (1972 : 180–91, 195–6)]। एक ही व्यक्ति का महाजन तथा अनोज व्यापारी होने के आम तथ्य के प्रति ह्विटकोंब ने ध्यान आकर्षित किया है. .. (जो) अक्सर कर्ज की तलाश में भटकने वाले किसान को उसकी फसल के उचित दाम से वंचित रखता था (ह्विटकोंब, 1972 : 188)। धनी किसान को इस बात का उतना आभास नहीं होता था जितना अन्य किसानों को। चरण सिंह का सम्बंध महाजनी और व्यापार न करने वाले धनी कृषक वर्ग से था, हालांकि जो रूसी कुलक की तरह का नहीं था। यह वह धनी कृषक वर्ग था जिसके अन्दर सूदखोरी और व्यापारिक पूंजी से टकराने की सम्भावना थी। इस प्रकार की अरुचियों ने चरण सिंह को राजनैतिक कार्य में प्रवृत्त किया होगा।

भारतीय संदर्भ में इस प्रकार के वर्ग विरोध और वर्ग आधारित प्रवृत्तियां जाति भेद के प्रश्न के साथ मिलकर और भी गहन हो सकती हैं। परिणाम विशेष प्रकार का स्पष्ट सम्मिश्रण हो सकता है। हमारे सामने एक विवादास्पद मुद्दा है जिस पर सामान्यतः और चरण सिंह तथा उन लोगों को जिनका वे प्रतिनिधित्व करते थे, को लेकर पर्याप्त असहमति है।

जैसा कि उन्नीसवीं शताब्दी के अंत में और बीसवीं शताब्दी के आरम्भ में यू0पी0 में यह एक आम बात थी कि जमींदार यदि ब्राह्मण होता तो उसके प्रति विरोध का उसके ब्राह्मण होने के कारण, एक अतिरिक्त कारण बन जाता था। ह्विटकोंब इस बात की ओर ध्यान आकर्षित करता है कि चरण सिंह के जन्म से कुछ ही वर्ष पहले यू0पी0 के अलीगढ़ जिले में, जो मेरठ से बहुत दूर नहीं है, ऐसे ब्राह्मण जमींदार थे, जिनकी भू–सम्पत्ति जाटों के गांवों में आमतौर पर पाई जाती थी और जिन्होंने मनमाने तरीके से सूदखोरी की। (ह्विटकोंब, 1972 : 276)। यह स्पष्ट नहीं है कि कुचेसर गांव का जमींदार ब्राह्मण था या कोई और। यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि ''चरण सिंह ब्राह्मण और ब्राह्मणों द्वारा बनाई गई सामाजिक व्यवस्था से नफरत करते थे' (नायक, 1979 : 31)। ब्राह्मणों के प्रति अपनी नफरत को चरण सिंह ने कभी नही छिपाया। इस नफरत का जो भी स्रोत रहा हो इसे उन्होंने कभी नहीं छोड़ा।

वर्ग और जाति सम्बंधी बातें परस्पर व्याप्त हैं और वर्गक्रम के किसी अन्य छोर पर एकाकार हो जाती है। बीसवीं शताब्दी के आरम्भ में उत्तरी भारत तथा भारत के अन्य भागों में अधिकांश खेतिहर मजदूर अछूत थे। [उद्धृत, बेते (1972:414–16); महर (1972:18–19, 30);

मेंचर (1972 : 38–42, 46–7); नेल (1972 : 57)]। यदि जाट ब्राह्मणों से नफरत करते हैं तो अछूतों से भी वे कम नफरत नहीं करते।

ऐसे ही कुछ प्रभाव हैं जिन्होंने चरण सिंह पर सांस्कृतिक, भावनात्मक, बौद्धिक और राजनैतिक संस्कार डाले। उनके राजनैतिक आचरण और फिर उनके बौद्धिक/वैचारिक संस्कारों पर विचार करने से पूर्व उनके राजनैतिक जीवन का संक्षिप्त चित्रण देना उपयोगी होगा।

III चरण सिंह के राजनैतिक जीवन का संक्षिप्त चित्रण

चरण सिंह ने मैट्रिक की परीक्षा गवर्नमेंट हाई स्कूल मेरठ से पास की। उन्होंने आगरा कॉलेज, आगरा से 1923 में बी.एस–सी तथा 1925 में इतिहास में एम.ए. किया। 5 जून 1925 के दिन उनका विवाह गायत्री देवी के साथ सम्पन्न हुआ और 1926 में उन्होंने कानून की डिग्री हासिल की। 1928 में उन्होंने मेरठ के प्रमुख कस्बे गाजियाबाद में वकालत शुरू की और 1939 तक वहीं रहे। तत्पश्चात मेरठ चले गये।[2]

वे 1929 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस में शामिल हुए और 1967 तक कांग्रेस पार्टी के सदस्य बने रहे। स्वाधीनता संघर्ष में उन्होंने सक्रिय रूप से भाग लिया। 1930 में नमक कानून का उल्लंघन करने पर उन्हें छह माह की सजा हुई। अगस्त 1940 में उन पर मुकदमा चलाया गया पर बाद में उन्हें रिहा कर दिया गया। परन्तु व्यक्तिगत सत्याग्रह आन्दोलन के तहत फिर उन्हें 1940 में एक साल की सजा हुई। एक बार फिर अगस्त 1942 में भारत रक्षा कानून के तहत उन्हें गिरफ्तार किया गया और नवम्बर 1943 तक वे जेल में रहे। यह सिलसिला 1947 में समाप्त हुआ, हालांकि आठवें दशक की इमरजेंसी के दौरान अन्य विरोधी नेताओं के साथ उन्हें भी जेल में बंद किया गया था।[3]

मेरठ जिले के छपरौली क्षेत्र से फरवरी 1937 में उन्हें यूनाइटेड प्रॉविन्सेज की विधानसभा के लिए चुना गया। कृषक तबकों के सक्रिय प्रतिनिधि के रूप में उनका जीवन इसी बिन्दु से शुरू होता है। 1937 से 1977 तक वे उत्तर प्रदेश विधानसभा के सदस्य बने रहे।[4]

पांचवे दशक के आरम्भिक वर्षों में चरण सिंह मेरठ जिले की राजनीति पर छाये रहे। 1929 में उन्होंने गाजियाबाद की टाउन कांग्रेस कमेटी स्थापित कराई और 1939 तक इसके विभिन्न पदों पर बने रहे। तदन्तर वे मेरठ चले गये थे। 1932 से 1936 तक वे मेरठ जिला परिषद के उपाध्यक्ष रहे। पंडित पंत के मत्रिमंडल में 1946 में उन्हें यू0पी0 कांग्रेस राज्य सरकार का संसदीय मामलों का सचिव नियुक्त किया गया और इस पद पर वे 1951 तक आसीन रहे। इस दौरान पहले वे राजस्व मंत्री के साथ रहे, फिर स्वस्थ्य मंत्री के साथ। इसके बाद स्थानीय स्वायत्त शासन मंत्री के साथ और अंत में मुख्यमंत्री के साथ। वे इस बात के लिए सशक्त ज्ञान राशि अर्जित कर रहे थे कि किस प्रकार राजनीतिक स्तर पर अपने घटकों के लिए व्यापक आधार पर काम किया जा सकता है।[5]

1951 से 1967 तक, 1959–60 की अल्प अवधि को छोड़कर, चरण सिंह राज्य मंत्रिमंडल के महत्वपूर्ण सदस्य थे। इस अवधि के दौरान कृषि क्षेत्र में जो राजनैतिक उपलब्धियां उन्होंने अर्जित कीं, वे महत्वपूर्ण हैं। वे इन पदों पर आसीन रहे– न्याय और सूचना मंत्री (जून–सितम्बर 1951); कृषि, पशुपालन और सूचना मंत्री (सितम्बर 1951 उपरांत); राजस्व

और कृषि मंत्री (1952–54); राजस्व और परिवहन मंत्री (1955–57); राजस्व मंत्री (अप्रैल, 1959); गृह एवं कृषि मंत्री (1960–62); कृषि मंत्री (मार्च 1062–अगस्त 1963); वन एवं कृषि मंत्री (1963–65); वन एवं स्थानीय स्वायत्त शासन मंत्री (1966–67)। इन उपलब्धियों का विश्लेषण मैंने अगले भाग में किया है।[6]

1967 तक चरण सिंह कांग्रेस में रहे। 1 अप्रैल 1967 को उन्होंने अपने 17 साथियों के साथ कांगेस छोड़ दी। कई सालों से कांग्रेस के प्रति उनके मन में असंतोष पनप रहा था और उत्तर प्रदेश के कांग्रेस नेता सी0बी0 गुप्ता के साथ उनकी अनबन दसाधिक वर्षों से चल रही थी। एक समीक्षक के अनुसार,

चरण सिंह के बारे में यह ज्ञात था कि वे कई सालों से राजनैतिक और बौद्धिक दोनों दृष्टियों से अपने कांग्रेसी सहयोगियों से असंतुष्ट थे, विशेषकर कांग्रेस नेता सी0बी0 गुप्ता से , जिनके प्रति उनके मन में कोई इज्जत नहीं थी। इस सम्बंध विच्छेद का औचित्य तथाकथित भ्रष्टाचार तथा भूतपूर्व कांग्रेस प्रशासन और उसके कुछ सदस्यों की प्रशासनिक अकुशलता में देखा गया। (ब्रास, 1984: 120)

1947 के उपरांत पहली बार 1967 में कांग्रेस विधानसभा में बहुमत प्राप्त न कर सकी। इसने स्वतंत्र विधायकों तथा विरोधी दलों में सम्मिलित दल–बदलुओं के साथ मिलकर सरकार का गठन किया। चरण सिंह द्वारा कांग्रेस छोड़े जाने के उपरांत 17 दिनों के बाद यह सरकार गिर कई। चरण सिंह निर्विरोध रूप से संयुक्त विधायक दल के नेता चुने गये। इसमें सभी विरोधी दलों के प्रतिनिधि थे। 3 अप्रैल 2967 के दिन उन्होंने मुख्यमंत्री पद की शपथ ग्रहण की और इस पद पर 1968 तक बने रहे। उनकी टक्कर शीघ्र ही कांग्रेसी केन्दीय सरकार से हुई। मुद्दा था– अनाज की खरीद–वसूली की नीति कैसी हो।[7]

उन्होंने अपने लिए स्वतंत्र राजनैतिक मार्ग चुन लिया था (डंकन, 1979 :2)। विभिन्न वर्गीय हितों वाली कांग्रेस पार्टी के सदस्य के रूप में जो निहित प्रतिबंध थे उनसे अब वे मुक्त थे। अब वे स्वतंत्र रूप से बिना समझौतावादी दृष्टि अपनाये विशिष्ट वर्गीय प्रतिनिधित्व पर अपना ध्यान केन्द्रित करना चाहते थे। नई दृष्टि का विस्तार उन्होंने कृषक समाज के पक्ष में किया। मैं उनकी राजनैतिक गतिविधि की वास्तवि विषय वस्तु को पहले ही निर्दिष्ट कर चुका हूँ।

उन्होंने 1967 में भारतीय क्रांति दल नामक नये दल का गठन किया। 1969 के मध्यावधि चुनावों में केवल दो साल की अस्तित्व वाली बी0के0डी0 राज्य विधान मंडल में कांग्रेस की प्रमुख विरोधी पार्टी बन गई। वे 1070 मं दूसरी बार कांग्रेस रहित संयुक्त सरकार के मुख्यमंत्री बने। उसके बाद 1977 तक उत्तर प्रदेश विधानसभा में विरोधी दलों के नेता बने रहे।[8]

1974 में उन्होंने राष्ट्रीय स्तर पर सभी विरोधी दलों को एक करने का प्रयास किया और परिणाम था उसी वर्ष 29 अगस्त के दिन भारतीय लोक दल का जन्म। इस दल में सम्मितल हुए– बी0के0डी0, स्वतंत्र पार्टी के कुछ तबके, संयुक्त सोशलिस्ट पार्टी, उत्कल कांग्रेस, राष्ट्रीय लोकतांत्रिक दल, किसान मजदूर पार्टी और पंजाबी खेतीबाड़ी जमींदारी यूनियन। 26 जून 1975 के दिन इंदिरा गांधी ने आपातकाल (इमरजेंसी) की घोषणा कर दी। आपातकाल की अवधि जनवरी 1977 तक रही। इस अवधि के दौरान चरण सिंह को जेल में बंद किया गया था। 1977 में वे जनता पार्टी के प्रमुख शिल्पियों में से थे, जिसमें भारतीय

लोकदल का विलय किया गया। उसी साल मार्च में जब भारत में आम चुनाव हुए तो जनता पार्टी ने विजय हासिल की। 1977 में वे छठी लोकसभा के लिए चुने गये। अब वे राष्ट्रीय राजनीति के शिखर पर थे। मार्च 1977 से जून 1978 तक जनता सरकार में वे भारत के गृहमंत्री रहे और जनवरी 1979 से जुलाई 1979 तक भारत के वित्त मंत्री।[9]

इसी अवधि के दौरान 23 दिसम्बर 1978 के दिन अपने 76वें जन्मदिन के उपलक्ष्य में चरण सिह ने दिल्ली में आयोजित एक विशाल किसान रैली की अध्यक्षता की। इसमें लगभग दस लाख किसान शामिल हुए। राजनैतिक दृष्टि से यह एक महत्वपूर्ण घटना थी क्योंकि इसके माध्यम से धनी एवं मध्यमवर्गीय कृषक समाज ने अपना वर्चस्व प्रदर्शित किया और राष्ट्रीय स्तर पर चरण सिंह की विचारधारा को अभिव्यक्ति का अवसर प्राप्त हुआ। इस अवसर पर चरण सिंह की राजनीति की वे यथार्थताएं भी सामने आईं, जिन्हें उन्होंने अपने लेखन या नीति सम्बंधी घोषणाओं में पहले कभी व्यक्त नहीं किया था। उसका वर्णन नीचे कर रहा हूँ।[10]

चरण सिह ने 1979 में जनता पार्टी का विच्छेदन किया और उसी वर्ष जुलाई में कांग्रेस की सहायता से वे केयर टेकर प्रधानमंत्री बने। सितम्बर 1979 में उन्होंने लोकदल नाम से अपनी पुरानी पार्टी का नवीनीकरण किया। जुलाई 1979 से जनवरी 1980 तक छह महीने के लिए वे भारत के प्रधानमंत्री बने।[11]

जनवरी 1980 के मध्यावधि चुनावों में श्रीमती गांधी और कांग्रेस ने उन्हें पराजित किया। उसके बाद उनके राजनैतिक जीवन का ह्रास होता चला गया। 1984 के आम चुनावों में लोकदल को भारी क्षति पहुंची। हृदय रोग से पीड़ित चरण सिंह अब बूढ़े हो चले थे। अमेरिका में प्रशिक्षित अपने इंजीनियर पुत्र अजित सिंह को उन्होंने उत्तराधिकार दिलाने की कोशिश की और इसी प्रश्न पर 1987 में लोकदल का विभाजन हो गया।[12]

29 मई 1987 में उनकी मृत्यु के बाद ऐसे जीवन का अंत हुआ जो जमींदारों के आधिपत्य वाले अर्द्धसामंती ग्रामीण परिपेश से गतिमान और विकासशील उग्र पूंजीवाद तक फैला हुआ था। यह पूंजीवाद अपने आवयश्यक पहलुओं के साथ निम्न स्तरों से उन्नत होने वाला पूंजीवाद है– ऐसा पूंजीवाद, जिसकी जड़े कृषक समाज में हैं। प्रभुत्वशाली जमींदार वर्ग के खिलाफ ऐसे पूंजीवाद को सफल संघर्ष की आवश्यकता पड़ती है। चरण सिंह ने इस संघर्ष का नेतृत्व किया। इससे धनी किसानों का जोरदार अभ्युदय हुआ, उनमें एकजुटता स्थापित हुई और इसकी परिणति अंततः पूंजीपति कृषक वर्ग में हुई। यह प्रक्रिया अभी पूरी नहीं हुई है। इस प्रक्रिया में अंतर्विरोध और असमानता है। चरण सिंह ने ऐसी सामाजिक शक्तियों का प्रतिनिधित्व किया, जा नीचे से उठने वाले पंजीवाद के अग्रिम पंक्तीय रक्षक हैं। वे अपने राजनैतिक आचरण और विचारधारा के आधार पर इस प्रकार की प्रक्रिया के केन्द्रीय अंतर्विरोधों के प्रतीक थे।

IV. चरण सिंह का राजनैतिक आचरण

(क) 1947 से पूर्व और उसके बाद धनी एवं मध्यवर्गीय किसानों के प्रतिनिधि के रूप में

चरण सिंह के गंभीर एवं विद्वतापूर्ण विश्लेषण की आवश्कयता है। उन थोड़े–से विद्वानों में, जिनका ध्यान उनकी ओर गया, कम से कम इस बात पर सहमति है कि उन्होंने सभी

किसानों का नहीं, अपितु उनके कुछ तबकों का प्रतिनिधित्व किया। यह बात पर्याप्त रूप से सदैव स्पष्ट न हो सकी।

बाक्स्टर हमें बताता है कि ''वे मध्य वित्तीय किसान तथा व्यक्तिगत स्वामित्व के प्रवक्ता थे'' (बास्टर, 1975 : 118)। जैसा कि हम आगे देखेंगे वे निश्चित रूप से कृषक स्वामित्व के जोरदार अधिवक्ता थे। 'मध्यम किसान' वाली बात का क्या अर्थ होना चाहिए, स्पष्ट नहीं है। यह उन वर्ग हितों को ग्रहण नहीं करता, जिनका प्रतिनिधित्व चरण सिंह ने किया था। डंकन ने उन पर बारीक अध्ययन किया है और उनका परिचय दिया है– '(यू0पी0 में) अपेक्षाकृत अधिक सम्पन्न किसानों के सुप्रसिद्ध प्रवक्ता और हिमायती' (डंकन, 1979 : 2)। इससे उनकी सही–सही पहचान तो हो जाती है परन्तु स्पष्ट जानकारी प्राप्त नहीं होती। बहुविज्ञ और सहानुभूतिपूर्ण रवैया अपनाने वाले पर्यवेक्षक ब्रास अधिक स्पष्ट रूप से उनकी पहचान करता है– 'मध्यवर्गीय और धनी किसान भू–स्वमियों के हितों के सर्वश्रेष्ठ प्रवक्ता' (ब्रास, 1980 ब : 4)। चरण सिंह के राजनैतिक आचरण के परिणामों के तहत ब्रास की यह पहचान मुझे एकदम सही लगती है। इन दोनों तबकों ने चरण सिंह के राजनीतिक आचरण से लाभ प्राप्त किया और प्रतिदान में चरण सिंह को दोनों से समर्थन मिला। परन्तु सर्वाधिक लाभ धनी किसानों को ही मिला।

किन्तु चरण सिंह का महत्व इस बात में निहित है कि उन्होंने उत्तरी–पश्चिमी भारत के धनी किसानों के अभ्युदय और उनकी एकजुटता में योगदान किया। ऐसा करते हुए उन्होंने पश्चिमी उत्तर प्रदेश में निम्न स्तरों से उठने वाले कृषि पंजीवाद के लिए कुछ रास्ता साफ किया। हम देखेंगे कि चरण सिंह ने पूंजीवाद के खिलाफ नव लोकरंजकतावाद का नारा दिया। कृषि पूंजीवाद के रास्त की कुछ रुकावटों को कम करने में ऐसा करना असंगत नही था। ऐसा करने के लिए उन्होंने उन ताकतों को खुला छोड़ने में मदद की, जिनकी शक्ति का उन्होंने अवमूल्यन किया और जिनके अंतिम परिणामों को वे नफरत से देखते।

धनी एवं मध्यम किसानों के लिए चरण सिंह की प्रमुख उपलब्धियां 1947 केबाद अर्जित की गई थीं। वैसे वे आजादी से पूर्व ही अपने रास्ते का निर्माण कर रहे थे– आवश्यक राजनैतिक दक्षता अर्जित करते हुए और मौजूदा प्रभुताशाली वर्गों की संगठित वर्ग शक्ति द्वारा उत्पन्न प्रबल अवरोधों से टकराते हुए।

(ख) प्रारंभिक लक्ष्य, 1938 : व्यापारी की खूंखार प्रवृत्ति

यदि उन अवरोधों की पहचान करनी हो जो नीचे से उठते हुए पूंजीवाद के विकास में आड़े आते हैं, तो उनमें से व्यापारी की दृढ़ पूंजी शक्ति एक है। यू0पी0 में, जहां चरण सिंह बड़े हुए और जहां वे चौथे दशक में राजनीतिक दृष्टि से सक्रिय थे, किसानों के सभी तबकों ने अपने हितों के विरोधी व्यापारी वर्ग से टक्कर ली। सबसे नाजुक स्थिति उन गरीब किसानों की थी जिन्हें शक्तिशाली दबावों के कारण के लिए, आपद्धर्म स्थिति में फसल बचानी पड़ती थी– ''डिस्ट्रैस सरप्लस'' [देखें नारायण (1961 : 36–8) और बायर्स (1974 : 237–40) डिस्ट्रैस सरप्लस की बात पर]। परन्तु मध्यवर्गीय और धनी किसान व्यापारियों के चंगुल में नही थे। व्यापारियों की शक्ति का इस्तेमाल धनी किसानों की शक्ति कम करने के लिए किया जाता था।

चरण सिंह का सर्वप्रथम वैधानिक कार्य अपने कृषि आधारित घटकों के पक्ष में व्यापारियों के प्रति लक्षित था। ऐसा 1939 में हुआ। उन्होंने मार्च और अप्रैल 1938 में ''हिन्दुस्तान टाइम्स'' के लिए ''कृषि विपणन'' (एग्रीकल्चरल मार्केटिंग) पर लेख लिखा (सिंह, 1938)। उसी साल बाद में उन्होंने प्राइवेट मेंबर की हैसियत से यू0पी0 विधानसभा में 'एग्रीकल्चरल प्रोड्यूस मार्केट्स बिल' प्रस्तुत किया, जिसके तहत व्यापारी की खूंखार प्रवृत्ति के खिलाफ उत्पादक के हितों की रक्षा का विधान था (सिंह, 1968 :2)। उन्हें बाद में ध्यान आया कि उक्त विधान में खरीदी या बेची हुई वस्तु की कीमत और परिणाम पर किसी प्रकार के नियंत्रण की बात नहीं की गई थी। दोनों में से अपेक्षाकृत अधिक चालाक पार्टी के हथकंडों पर ही ध्यान दिया गया (यानि व्यापारी–उत्पादक सम्बंध को देखते हुए)।

उन्होंने पूंजीवाद के अवरोधों की कोई चर्चा नहीं की। यह उनकी कार्यसूची का हिस्सा नहीं था। उनके उक्त विधान के उद्देश्यों को सम्भवतः एडम स्मिथ ने प्रभावित किया होगा।

न ही उन्होंने विशिष्ट कृषक वर्ग की ओर संकेत किया। उनकी मान्यता थी कि सभी कृषि उत्पादक नुकसान उठाते हैं और व्यापारियों की शक्ति कम करने पर उन्हें फायदा होना चाहिए। वास्तव में केवल धनी किसान ही इस प्रकार के कदम से लाभ प्राप्त कर सकते थे, क्योंकि उनके पास बहुत ज्यादा भू–सम्पत्ति थी। मध्यवर्गीय किसान भी कुछ लाभ प्राप्त कर सकते थे। शक्तिशाली शोषण चक्र में फंसे गरीब किसानों को फायदा पहुंचाना था तो उनके लिए व्यापक दिशा में काम करने की आवश्यकता थी।

किसानों के लिए किया गया उनका यह आरंभिक वैधानिक प्रयास सफल नहीं रहा। परन्तु राजनैतिक प्रशिक्षण के क्षेत्र में वे विलक्षणता प्राप्त कर रहे थे। उन्होंने बताया कि ऐसा कुछ करना 1964 तक सम्भव नहीं था। यू0पी0 में ऐसा बिल 1964 में पास हुआ। (सिंह, 1986 : 2)।

इस बात का कुछ महत्व अवश्य है कि चरण सिंह के स्मृति पटल में उक्त बिल की असफलता अंकित रही, और वे इस दिशा में उसके बाद प्रयास करते रहे। उनका कथन है कि 1938 और 1964 के बीच किये गये उनके प्रयासों को कांग्रेस और सरकार के उच्च स्थानों पर आसीन निहित स्वार्थी तत्वों ने सफल नहीं होने दिया (सिंह, 1986 : 2)। यह बात निश्चित रूप से विवादास्पद नहीं है। व्यापारी आज के दिन तक शक्तिशाली ढंग से संगठित हैं और प्रभावपूर्ण तरीके से उनका प्रतिनिधित्व हुआ है। 1938 के उपरांत 25 वर्षों तक उनकी स्थिति अत्यधिक सुदृढ़ थी। उनके प्रयासों को उनके पुराने कांग्रेसी प्रतिद्वंद्वी सी0बी0 गुप्ता ने जो उत्तर दिया उसकी चर्चा करते हुए चरण सिंह लिखते हैं, ''वे (गुप्ता) तर्क देते थे कि किसान अब सम्पन्न और शिक्षित हो चुके हैं, अतः व्यापारियों से स्वयं निपट सकते हैं....कृषि उत्पादन विपणन विधेयक अनावश्यक है'' (वहीं उद्धृत)। चरण सिंह ने इस (कु)तर्क को एकदम सही तरीके से ताड़ा था। क्योंकि यह बात बड़े किसानों के बारे में तो सही हो सकती थी परन्तु अधिकांश किसानों के लिए नहीं। उस बिन्दु पर धनी किसानों के मुकाबले में व्यापारियों की शक्ति को इतनी आसानी से नकारा भी नहीं जा सकता था।

(ग) एक दूसरा लक्ष्य 1939 महाजन

पूर्व साम्यवादी कृषि की गहराई में व्यापार पूंजी की अपेक्षा सूदखोर की पूंजी अधिक प्रभावशाली तरीके से प्रविष्ट होती है। व्यापार पूंजी की तरह यह मध्यवर्गीय किसानों की अपेक्षा

गरीब किसानों को बहुत भारी पड़ती है। परन्तु धनी किसानों के लिए इसलिए अर्थवान है कि यह (सूदखोरों की पूंजी) उनके शक्ति अर्जन के मार्ग में अवरोध पैदा करके उन्हें अपने वश में कर लेती है।

चरण सिंह ने 1939 में ऋण मुक्ति अधिनियम तैयार करके पेश किया तो उन्हें पर्याप्त ख्याति मिली। उनका कहना है कि महाजनों की लॉबी की ओर से फिर उनका विरोध हुआ और सबसे बड़ा मोहभंग उनका तब हुआ जब किसान और मजदूरों के सबसे बड़े सहारा समझे जाने वाले कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी की अग्रिम पक्ति में आने वाले आचार्य नरेन्द्र देव जैसे नेताओं ने ऋणदाताओं जैसी प्रबल मनोवृत्ति अपनाई (वहीं उद्धृत)।

इस बार वे सफल रहे। उनका कहना है कि इस बिल से किसानों को बहुत बड़ी राहत मिली (सिंह, 1986 : 3)। व्यवहार रूप से इस अधिनियम से धनी और मध्यम किसानों को ही विशेष फायदा पहुंचा; क्योंकि गरीब किसानों की स्थिति इतनी कमजोर और नाजुक थी कि वे अधिनियम की धाराओं का लाभ नहीं उठा पाये।

(घ) 1947 से पूर्व के और प्रयास : जमींदारी प्रथा पर ध्यान केन्द्रित

उनके अन्य प्रयासों की भी चर्चा होनी चाहिए। वे न तो चमत्कारी थे और न सफल ही रहे। परन्तु उनमें उनके भविष्य के राजनैतिक व्यवहार के दृढ़ संकेत निहित हैं।

5 अप्रैल 1939 के दिन उन्होंने कांग्रेस विधानमंडल पार्टी की कार्यकारिणी समिति के सम्मुख यह प्रस्ताव रखा कि हमारी आबादी के सबसे बड़े हिस्से कृषक और जोतदारों के बेटों तथा आश्रितों के लिए सार्वजनिक रोजगार की 50 प्रतिशत जगहें आरक्षित की जाएं (सिंह, 1986 : 2)। इस पर विचार नहीं किया जा सका, क्योंकि पार्टी ने विधानमंडल से अक्टूबर 1939 में इस्तीफा दे दिया था। परन्तु कृषि आधारित तबकों के पक्ष में उनका आग्रहपूर्ण रवैया स्पष्ट होता रहा।

अप्रैल 1939 में उन्होंने 'भूमि उपयोग बिल' का प्रारूप तैयार किया, जिसका लक्ष्य था 'भूमि जोतों के स्वामित्व को ऐसे काश्तकारों या वास्तविक जोतदारों को सौंपना जो जोती जा रही भूमि के वार्षिक लगान की दस गुना रकम सम्बद्ध जमींदार के खाते में सरकारी खजाने में जमा कर दें' (सिंह, 1986 : 3)। कुत्सित जमींदार वर्ग के खिलाफ उनका संघर्ष शुरू हो चुका था। जून के महीने में उन्होंने समाचार पत्र के लिए एक लेख लिखा (सिंह, 1939), जिसमें उन भूमिसुधारों का भ्रूण निहित था जिन्हें वे आजादी के बाद अनवरत गति से लाने वाले थे। इन्हीं भूमि सुधारों के अभ्यन्तर में था यू0पी0 में जमींदारी उन्मूलन। 1945 में उन्होंने भूमि तथा कृषि पर कांग्रेस के घोषणा–पत्र का प्रारूप तैयार किया जिसमें जमींदारी उन्मूलन का विधान था और इसे दिसम्बर 1945 में कलकत्ता में हुई अखिल भारतीय कांग्रेस कार्यकारिणी समिति में अनुमोदित किया गया (सिंह, 1986 : 3–4)।

चरण सिंह राजनैतिक और वैचारिक दृष्टि से किसानों के हिमायती बनने की तयारी में जुटे हुए थे। 1947 के बाद ही यह प्रयास परिपक्व हुआ। धनी तथा मध्यम किसानों ने उन्हें शक्ति, राजनैतिक कुशलता तथा कारगर परिणामों को पैदा करने वाले अपने प्रतिनिधि के रूप में देखा। सबसे पहले जमींदार वर्ग ने इस बात को भांपा।

(ड.) जमींदारी प्रथा पर आक्रमण (1) जमींदारी उन्मूलन कानून का अधिनियम तथा उसकी धाराएं

यू0पी0 तथा भारत के अन्य भागों में विशेषकर धनी किसानों ने जमीदार वर्ग के खिलाफ स्वयं संघर्ष किया। यह संघर्ष उन्नीसवीं शताब्दी में ही शुरू हो गया था। किसानों ने कुछ लाभ प्राप्त किये और धनी किसान और भी स्पष्ट रूप से एक विशिष्ट वर्ग के रूप में उभर रहे थे। फिर भी 1947 में जमींदार यू0पी0 तथा भारत के अन्य ग्रामीण अंचलों में देहाती इलाकों के मालिक बने रहे।

इस लड़ाई का सबसे महत्वपूर्ण हिस्सा अभी लड़ा जाना था। आरम्भिक छेड़–छाड़ 1947 से पूर्व ही शुरू हो गई थी। अब लड़ाई जोर से शुरू हुई। यह एक लम्बा संघर्ष था जिसकी व्यवस्था चरण सिंह ने बड़ी होशियारी से की। कम से कम चरण सिंह के घर के आस–पास पश्चिमी उत्तर प्रदेश में यह लड़ाई और चरण सिंह का योगदान भी निर्णायक था।

दीर्घकाल से जमींदारी प्रथा का विरोध करने वाल चरण सिंह ने यू0पी0 भूमि सुधार विधान, जिसका लक्ष्य जमीदार वर्ग पर घातक प्रहार करनला था, को **जमींदारी उन्मूलन कानून** से अभिहित किया (ब्रास, 1980 ब : 4 : डंकन 1979 : 2)। यह अपने आप में एक उपलब्धि थी।

कार्यान्वयन पक्ष को छोड़ जमींदारी उन्मूलन कानून का विधान के रूप में निर्माण एक लम्बा सिलसिला था। इस लम्बी अवधि के पीछे जमींदारों की सुदृढ़ शक्ति थी। डेनियल थॉर्नर ने जमींदारी उन्मूलन की प्रारम्भिक तैयारियां तथा वैधानिक प्रगति की ओर संकेत दिया है (थॉर्नर, 1956 : 48)। यह निश्चित रूप से सही चित्रण है। चौथे दशक से चल रही वैधानिक प्रक्रिया, वैधानिक तैयारी और उसका सफल्तापूर्वक अंत एक दशक तक छाया रहा। चरण सिंह सफल अधिवक्ता और मंजे हुए राजनीतिज्ञ थे तथा जब तक उक्त विधान की परिणति कानून में नहीं हुई, वे लोग रहे। 1946 से 1951 तक वे यू0पी0 कांग्रेस सरकार में संसदीय मामलों के सचिव रहे और 1967 तक राज्य मंत्रिमंडल के प्रभावशाली सदस्य रहे। इस अवधि के दौरान उन्होंने कृषि सम्बंधों से जुड़े महत्वपूर्ण पदों पर काम किया और उक्त कानून की पूर्ण जानकारी प्राप्त करके उसे अंतिम परिणति तक ले गये।

संक्षेप में इस कानून की प्रगति और मुख्य धाराओं का विवरण इस प्रकार है –

उत्तर प्रदेश में जमींदारी उन्मूलन समिति 1946 में नियुक्त हुई और इसने अपनी रिपोर्ट 1948 में पेश की। इस रिपोर्ट पर आधारित बिल को **सैलेक्ट कमेटी** को सौंपा गया। इसे राज्य विधानमंडल ने 1950 में पास किया और 1951 में राष्ट्रपति ने उस पर हस्ताक्षर किये। यह 1 जुलाई 1952 से लागू हुआ। उत्तर प्रदेश जमींदारी उन्मूलन तथा भूमि सुधार कानून 1950 में बना तथा 1952, 1954, 1956 तथा 1958 में संशोधन कानूनों के जरिये इसमें सुधार लाया गया। उसकी मुख्य धाराएं इस प्रकार हैं :

(i) उत्तर प्रदेश में स्थित सभी जमींदारी भू–सम्पत्तियों को बिना किसी प्रकार के प्रभार या दाय के राज्य को सौंपा गया। मध्यस्थों (राज्य और काश्तकार के बीच सभी भू–स्वामी) के सभी अधिकार, उनकी उपाधियॅ तथा हित राज्य को सौंपे गये। (ii) 'सर' उपाधि वाले जमींदारों की भू–सम्पत्ति तथा उनकी वह खुदकाश्त जमीन जो किसी दखलकार (आक्यूपेंसी टेनेंट) को नहीं दी गई, उनकी व्यक्तिगत सम्पत्ति मानी गई और राज्य को नहीं सौंपी गई। बिना राज्य को कुछ दिये 6सर8 तथा खुदकाश्त वाली जमीन के स्वामी जमींदारों को भूमिदारी

अधिकार दिये गये। भूमिदारी अधिकार का अर्थ है पूर्ण मालिकाना हक– उत्तराधिकार स्थानान्तरण तथा बंधक रखने आदि के अधिकार सहित (गवर्नमेंट ऑफ इंडिया 1976 : 92)। इसे जबरदस्त विरोध के बावजूद लागू करना पड़ा।

(च) जमींदारी पर आक्रमण (2) पटवारी प्रथा का पुनर्गठन

शक्तिशाली वर्गों के सुदृढ़ एवं संगठित विरोध के समक्ष कृषि विधान (लेजिस्लेशन) का अधिनियम सचमुच बहुत कठिन कार्य था। इसके कार्यान्वयन के मार्ग मं तो और भी विकट अवरोधक थे।

इस बिन्दु पर गांव के पटवारी की प्रमुख भूमिका थी। उसे गांव का अभिलेखपाल या पुराने तरीके से गांव का लेखाकार (एकाउन्टेंट) कहा जाता ह (थॅर्नर, 956 : 47; लंज 1962 : 201, 315; कह्विटकोंब, 1972 : 20, 42–3, 236, 246–7; डंकन 1979 : 2)। यू0पी0 में पटवारियों की सचमुच एक लम्बी फोज थी– वे 27000 के करीब थे (सिंह, 1986 : 42, 44, 47)। अंग्रेजों के आने से पूर्व से ही पटवारी थे। उसके चार्ज में सामान्यतः तीन या चार गांव होते थे और उसका काम था– गांव के नक्शे रखना; गांव की सीमा में हुए परिवर्तन का रिकार्ड रखना; जोत, लगान के स्तर तथा उसमें परिवर्तन और कौन किस जमीन का मालिक है– जैसी नाजुक बातें का लेखा–जोखा रखना [नेल (1962 : 20–2); वाल्श (1929 : 149–51)]।

दीर्घकाल से पटवारी की स्थिति स्पष्टतः दोहरी थी। एक ओर तो वह जमींदार का नौकर था जो जमींदार तथा उसकी जमीन जोतने वाले काश्तकारों के बीच भूमि सम्बंधी लेखा–जोखा, बकाया रकम, पेशगी तथा कर्ज आदि का रिकार्ड रखता था, जिसमें जमींदार के हित निहित थे (ह्विटकोंब, 1972 : 42–3)। दूसरी ओर राज्य के प्रति उसकी निष्ठा का प्रश्न था। हमें ज्ञ्ज्ञत हुंआ है कि अति प्राचीनकाल से चली आ रही प्रथा ने उसे सरकार का अभिलखपाल बनाया– भूमि के रिकार्ड रखने वाला– जो तथ्यतः अधिकांश में जमींदार के लिए एक वसूली के रिकार्ड होते थे। (ह्विटकोंब, 1972 : 20)। अंग्रेजों की शक्ति संगठित थी। उन्होंने उसे स्वतंत्र भूमिका प्रदान की। वे गांव वालों में 'पटवारी की स्थिति को यथावत बने रहना देना चाहते थे' (ह्विटकोंब, 1972 : 247)। पटवारी को प्राप्त कम सरकारी वेतन और पारिश्रमिक के लिए जमींदार पर उसकी निर्भरता (ह्विटकोंब, 1972 : 20, 250–51); ये ऐसे सशक्त कारण थे जिनके आधार पर उसकी निष्ठा के प्रति संदेह नहीं किया जा सकता। ऐसा उन्नीसवीं शताब्दी के अंत में भी था और 1947 में भी।

पटवारी स्थानीय शक्तिजाल में फंसा हुआ था और स्थानीय प्रभुत्वशाली वर्ग की सर्वोपरि शक्ति के अधीन था। एक लेखक के अनुसार पटवारी का पद पुश्तैनी था (नेल, 1962 : 315)। इसमें कोई संदेह नही। थॉर्नर सही तरीके से उसकी स्थिति स्प्ष्ट करता है कि जब पटवारी का पद खाली होता था तो जमींदारों को नये पटवारी को मनोनीत करने का अधिकार था (थॉर्नर, 1956 : 4)। यू0पी0 जमींदारी उन्मूलन समिति, यूनाइटेड प्रॉविन्सेज सरकार, 1948 : 176–77 की रिपोर्ट का हवाला देते हुए यही बात ह्विटकोंब ने बताई (ह्विटकोंब, 1972 :

43)। इससे यह बात असंगत नहीं ठहरती है कि पटवारी का पद वास्तव में पुश्तैनी था। परन्तु यह तो तय है कि पटवारी के ऊपर जमींदार का शक्तिशाली पंजा लम्बे समय तक कायम रहा। गांव के अन्दर पटवारी जमींदार का मनोनीत प्रतिनिधि था। वह उसकी हैसियत का न तो विरोध करता था और न अवमूल्यन।

भूमि कानून का कार्यान्वयन पटवारी के अभिलेखों (रिकॉर्ड) पर निर्भर था। (नेल, 1962 : 201)। पटवारी प्रथा यू0पी0 के किसानों के लिए पर्याप्त असंतोष का कारण थी। (डंकन, 1979 :2) और चरण सिंह के महत्वपूर्ण घटकों धनी और मध्यम किसानों के लिए भी कम असंतोष का स्त्रोत न थी। धनी किसानों का उन्नतशील वर्ग और कुछ कम सीमा तक मध्यम किसान पटवारी की गतिविधियों से बहुत परेशान थे, क्योंकि अभी जो कानून पास हुआ था उससे प्राप्त अधिकारों के आधार पर वे प्रभुता अर्जित करने के लिए संघर्षरत थे। गरीब किसान और भूमिहीन मजदूर इतने कमजोर थे कि इस कानून से ठोस लाभ प्राप्त नहीं कर सकते थे। इसी नाजुक मोड़ पर जमींदारी उन्मूलन कानून चट्टानी पटवारी व्यवस्था से टकरा कर चूर–चूर होने की सम्भावना ग्रहण रहा था।

केन्द्रीय प्रश्न था जमींदार की भू–सम्पत्ति के वे कौन से हिस्से हैं, जिन्हें 'सर' और 'खुदकाश्त' के रूप में वर्गीकृत किया जाए (थॉर्नर, 1956 : 4)। जमीन इस संगीन वर्ग में आती है या नहीं, इसके लिए बहुत–से आधार प्रस्तुत किये गये परन्तु इसी को लेकर पटवारी बहुत बड़ी खुराफात पैदा कर सकता था (थॉर्नर, 1956 : 48)। गांव के भूमि आलेखों में दर्ज की गई प्रविष्ठियों के आधार पर ही काश्तकारों और जमींदारों के अधिकारों का निर्धारण निर्भर था। अधिनियम की धीमी प्रगति ने यू0पी0 के पटवारियों को ऐसा अवसर प्रदान किया, जिसे उन्होंने सुनहरे स्वप्न में भी नहीं देखा होगा वहीं (उद्धृत)। थॉर्नर रूखेपन से लिखता है, ''वे इस अवसर से लाभ उठाने में नहीं चूके वहीं उद्धृत)। यहां पर उनका व्यवहार खुला और कुख्यातिपूर्ण था (वहीं उद्धृत)।''

इस बिन्दु पर चरण सिंह ने निर्णयात्मक ढंग से कदम बढ़ाया। वे 1952 में कांग्रेस मंत्रिमंडल में राजस्व और कृषि मंत्री बने। उन्हें अच्छी तरह पता था कि पटवारी भूमि अभिलेखों (रिकॉर्ड) में हेराफेरी करते हैं। 1953 में ये बहुत आगे बढ़ गये और उच्च वेतनमानों के लिए इन्होंने हड़ताल कर दी (थॉर्नर, 1956 : 48)। चरण सिंह ने सख्त कदम उठाया। उनके द्वारा तुरन्त कारगर कार्यवाही करने पर 'यू0पी0 सरकार की कोई बदनामी नहीं हुई। हजारों पटवारियों को कलम की एक ही नोक से बर्खास्त किया गया' (वहीं उद्धृत)। इसी मोड़ पर चरण सिंह का यह दावा था कि 'उन्होंने पटवारी प्रथा को पुनर्गठित किया' (डंकन, 1979 : 2)। यह महत्वपूर्ण उपलब्धि थी।

यह निश्चित है कि 'पटवारियों ने जो नुकसान किया वह न केवल बड़ा था बल्कि असंशोधनीय भी था' (थॉनॅर 1956 48)। उन्होंने भूमि आलेखों में हेराफेरी करके जिस जमीन पर जोतदारों को स्थायी अधिकार प्राप्त होना था, उसे भूमिदार बने जमींदारों के नाम पर कर दिया (वहीं उद्धृत)। परन्तु हम देखते हैं कि सबसे अधिक नुकसान गरीब किसानों को ही पहुंचा।

यह सच है कि पटवारियों की जगह नियुक्त नये लेखपाल– भूमि रिकार्ड रखने वालों का नया नाम– तथा पंचायत सेक्रेटरी अपने पूर्ववर्तियों की तरह ही भ्रष्ट निकले और पटवारियों की तरह उन्हें भी नफरत और अविश्वास की दृष्टि से देखा गया (नेल, 1962 : 245)। वांछित

अर्थ में स्थानीय सरकारों के कर्मचारियों को सुधारने का काम असफल रहा (वहीं उद्धृत)। परन्तु यह तो असंभव मापदंड के आधार परिणाम को जांचने वाली बात थी। चरण सिंह के हस्तक्षेप से कानून के कार्यान्वयन में तीव्रता आई। परन्तु इससे यू0पी0 भूमि सुधारों के तहत धनी एवं मध्यम किसानों की अच्छी खासी संख्या ही लाभान्वित हुई। यदि लेखपालों [जिन्हें अब भी पटवारी कहा जाता था नेल, 1962 : 245)] ने अपने पूर्ववर्तियों की तरह भ्रष्टाचार के तरीक अपनाये तो ऐसा उन्होंने लगातार धनी किसानों के कहने पर ही किया, जबकि इन्होंने ही पहले पटवारियों की गतिविधियों को कष्टप्रद तथा अवरोधपूर्ण समझा था। धनी एवं मध्यम किसान अब उनका इस्तेमाल अपने हित में कर रहे थे।

अधिनियम एक बार कानून बन गया और यथासम्भव तरीके से कार्यान्वित किया गया; परन्तु यह यू0पी0 में जमींदारी प्रथा का उन्मूलन न कर सका (ब्रास, 1980ए : 396–7) और खासकर के अपने गढ़ पूर्वी उत्तर प्रदेश में इसका उन्मूलन न हो सका। न ही इसने भूमिहीन मजदूरों और गरीब किसानों को कोई लाभ पहुचाया। परन्तु इसने खासकर चरण सिंह के गृह क्षेत्र पश्चिमी उत्तर प्रदेश के धनी एवं मध्यम किसानों को काफी फायदा पहुंचाया; जहां ऐसे किसानों की स्थिति पूर्वी भाग की अपेक्षा काफी शक्तिशाली थी [पश्चिमी उत्तर प्रदेश में धनी एवं मध्यम किसानों की महत्ता पर जानने के लिए पढ़ें– क्लिफ्ट (1982)]। यह महत्वपूर्ण उपलब्धि थी। जमींदारों के खिलाफ पहले से चले आ रहे दीर्घकालिक संघर्ष के बिना यह सम्भव न था और इसके बिना स्वातंत्रयोत्तर भारत के बड़े जमींदारों की परिणति आत्मरक्षा में संलग्न कमजोर वर्ग के रूप में न होती। फिर भी प्रतिकूल परिस्थितियों के बावजूद जिन तबकों का वे प्रतिनिधित्व करते थे उनके लिए चरण सिंह (जमींदार वर्ग के) प्रबल विरोधी सिद्ध हुए [उनके अपने बारे में देखें– चरण सिंह (1986 : 41–50)]।

(छ) चकबंदी और धनी एवं मध्यम किसान : दि कॉनसोलिडेशन ऑफ होल्डिंग्स एक्ट 1953

इस अवधि के दौरान भी एक महत्वपूर्ण अधिनियम लाने में चरण सिंह व्यापक रूप से संलग्न थे (डंकन, 1979 : 2) जिसने खासकर धनी एवं मध्यम किसानों तथा विशेष रूासे धनी किसानों का मार्ग सुगम बना दिया (ब्रास, 1980ए : 398)। यह उत्तर प्रदेश कॉनसोलिडेशन ऑफ होल्डिंग्स एक्ट 1953 था, जिसने किसानों की व्यक्तिगत भू–सम्पत्तियों के लिए चकबंदी कार्यक्रम का प्रतिनिधित्व किया (डंकन, 1979 : 2)।

भारत के अन्य भागों की तरह यू0पी0 में भी भूमि जोत टुकड़ों में विभक्त थे– किसी का एक खेत यहां तो दूसरा काफी दूर था। एक ही खेत के अलग–अलग हिस्से। अधिकांश भारत में अभी तक यह स्थिति है। धनी, मध्यम और गरीब सब तरह के किसानों के जोत टकड़ों में विभक्त थे। यू0पी0 के संदर्भ में इसे तालिका नं0 1 में स्पष्ट रूप से दिखा गया है, जिसके अन्तर्गत पश्चिमी उत्तर प्रदेश के दो जिलों– मेरठ तथा मुजुफ्फरनगर के लिए 1954–57 के आंकड़े दिये गये हैं। पांच एकड़ तक के चालू जोतों के प्रति जोत के हिसाब से छह टुकड़े, पांच से पन्द्रह एकड़ वाली जोतों के 9 और 15 के बीच में और 15 एकड़ से ऊपर वाली जोतों के 16 और 24 के बीच में टुकड़े थे। मोटे तौर पर गरीब, मध्यम और अमीर सब तरह के किसानों के लिए इस स्थिति को हम क्रमशः लेते हैं।

तालिका–1
उत्तर प्रदेश में जोतों का विखंडन[1] 1954–57[2]

ग्रुप का साइज (एकड़ों में)	कॉस्ट एकाउंटिंग सेंपल[3] टुकड़ों की संख्या प्रति फार्म प्रति एकड़		टुकड़ों का औसत आकार	सर्वे सेंपल[3] टुकड़ों की संख्या प्रति फार्म प्रति एकड़		टुकड़ों का औसत आका
2.5 से नीचे	2.79	1.62	0.62	3.61	2.20	0.25
2.5–5.0	5.98	1.55	0.65	6.26	1.70	0.59
5.0–7.5	9.04	1.63	0.70	9.26	1.51	0.66
7.5–10.0	10.54	1.21	0.83	11.91	1.39	0.72
10.0–15.0	12.28	1.02	0.98	16.57	1.22	0.82
15.0–20	16.66	0.99	1.01	18.39	1.21	0.33
20.0–25	15.52	0.70	1.43	21.67	1.10	0.41
25 और ऊपर	19.59	0.61	1.65	24.36	0.70	1.28

टिप्पणियां :

1. यहां उत्तर प्रदेश के दो जिलों– मेरठ और मुजफ्फरनगर– का क्षेत्र दर्शाया गया है।
2. जून 1954 से मई 1957 तक के तीन कृषि वर्षों का अध्ययन प्रस्तुत किया गया है।
3. कॉस्ट एकाउंटिंग और सर्वेक्षण विधियों की जांच यह देखने के लिए की गई है कि दोनों एक समान परिणाम देने वाले हो सकते हैं या नहीं। कॉस्ट एकाउंटिंग विधि की जांच के लिए फील्ड वर्कर को चुने हुए गांव में लम्बे समय तक रहना पड़ा जबकि सर्वेक्षण विधि के तहत जांचकर्ता को बीच–बीच में जाकर बहुत–से उत्तरदाताओं से आंकड़े एकत्र करने पड़े। प्रथम विधि काफी खर्चीली पर अधिक विश्वसनीय सिद्ध हुई।

स्त्रोत– भारत सरकार 1963 : 26

भूमि विखंडन का जो भी स्त्रोत रहा हो (उसकी सही जांच की अपेक्षा है) और जो भी प्रयत्न (यदा–कदा) इसके अस्तित्व की युक्तिपूर्णता तथा औचित्य स्थापना में लगे हों,[14] इसमें कोई संदेह नहीं है कि विखंडन फ्रैगमेंटेशन भूमि के कुशल प्रबंध में एक बहुत बड़ी रुकावट थी, इस रुकावट का तीव्र आभास विशेषकर उन धनी किसानों को हुआ था जो आदि–पूंजीवादी थे और जिन्होंने चकबंदी को अपनी जमीन के सबसे कारगर उपयोग के लिए अत्यंत आवश्यक समझा। व्यापक भूमि विखंडन, जैसा कि निर्दिष्ट किया गया है, भूमि प्रबंध के मार्ग में सशक्त रुकावट थी।[15] चरण सिंह ने इस बात को छठे दशक के आरम्भ में ही भांप लिया था। 'हर प्रकार के ग्रामीण विकास के लिए भूमि जोतों की चकबंदी एक आवश्यक पूर्वशर्त है' (सिंह, 1986 :102)।[16] यह उनकी अत्युक्ति नहीं थी। बाद में सातवें दशक के मध्योपरांत जब नई तकनीक उपलब्ध हुई तो विशेषकर मशीनीकरण के संदर्भ में धनी किसानों के लिए चकबंदी अतिरिक्त रूप से महत्वपूर्ण सिद्ध हुई (ब्रास, 1980ए : 398)। यह स्थिति छठे दशक के आरम्भ में यू0पी0 के कृषि क्षेत्र में लगभग नहीं के बराबर थी। 1953 के कानून ने चकबंदी को सम्भव बनाया। यह प्रगति का एक महत्वपूर्ण कदम था जिसका श्रेय चरण सिंह को जाता है।

इस कदम को अत्यंत विश्वस्त एवं व्यापक तरीके से पश्चिमी उत्तर प्रदेश में लागू किया गया जहां धनी एवं मध्यम किसानों की स्थिति बड़ी मजबूत थी और जिसका मध्यम एवं बड़े जोतकारों के लिए विशेष महत्व था (ब्रास, 1980 एस.वहीं उद्धृत)। इसने जो प्रक्रिया शुरू की उसके द्वारा चतुर्थ पंचवर्षीय योजना के अंत (1971) तक राज्य की कृषि योग्य आधी भूमि की चकबंदी सम्पन्न हो गई थी (वहीं उद्धृत)। यह कोई सामान्य उपलब्धि न थी।

भारत के अन्य भागों में ऐसी उपलब्धि केवल पंजाब और हरियाणा में अर्जित की गई थी। (गवर्नमेंट ऑफ इंडिया 1976 : 184, 188, 233–4)। पंजाब के संदर्भ में देखें– उदाहरणार्थ, चड्ढा (1986 : 66–8), रंधावा (1974 : 38–44)। पंजाब, हरियाणा और पश्चिमी उत्तर प्रदेश कृषि पूंजीवाद (निम्न स्तरों से उठता हुआ पूंजीवाद) का केन्द्रस्थ क्षेत्र है– यही प्रदेश अनवरत कृषि प्रगति के लिए प्रसिद्ध है। इसीलिए यह कोई इत्तिफाक की बात नही है कि इन्हीं प्रदेशों में चकबंदी ने सर्वाधिक प्रगति की।

इस प्रकार के परिवर्तन बिना संगठित वर्ग व्यवहार तथा प्रभुता प्राप्ति हेतु संघर्षरत उभरत हुए वर्गों के लिए राज्य समर्थन के नहीं लाये जा सकते। (इस स्थिति के प्रति) विरोध तीव्र एवं गहन हो सकता था। एक विशेषज्ञ के अनुसार, ऐसे लोग जिनका संयुक्त भू–सम्पत्तियों में हिस्सा है या जो गांव की साझी (पंचायती) जमीन में अपने हिस्से से अधिक पर अपना हक जमाना चाहते हैं या दूसरों की जमीन हड़पना चाहते हैं, वे चकबंदी की स्वैच्छिक योजना का विरोध करेंगे और इसे लागू किया जाए तो हर कदम पर इसका विरोध करेंगे। इस सम्बंध में प्राप्त अनुभव ने यह बताया है कि मतभेद तब पैदा होते हैं जब जमीन की चकबंदी हो जाती है, तो विरोधियों के हित परस्पर टकराते हैं और प्रभुत्वशाली वर्ग कमजोर वर्गों के हितों पर प्रहार करते हैं तथा इस योजना को असफल बनाने का प्रयास करते हैं (गवर्नमेंट ऑफ इंडिया, 1976 : 197)।

जिनको इससे लाभ प्राप्त होना भी है तो उन्हें जो जमीन 'अपनी' थी उसे छोड़ने में स्वाभाविक रूप से संकोच होगा। पर्याप्त संदेह की गुंजाइश वहां होगी जहां भू–खंडों का विनिमय करते समय अच्छी जमीन के बदले बुरी जमीन दी जायेगी।

उत्तर प्रदेश में चरण सिंह ने हस्तक्षेप किया और इस संदर्भ में जो भी विरोध, सकोच अथवा संदेह था उस पर काबू पाया।[17] कांग्रेस और उसके बाहर 1953 के कानून के प्रति विरोध की जैसी भी विविधता थी, उसका मुकाबला चरण सिंह ने सफलतापूर्वक किया (सिंह 1986 : 103)। आगे वे कहते हैं –

उन अनेक योजनाओं और उपायों जिनका सार्वजनिक दायित्वों के रूप में उन्हें निर्वाह करना था, उनमें भू–सम्पत्तियों की चकबंदी का मुद्दा भ्रष्टाचार की संभावनाओं से युक्त था। भू–स्वामियों की अलग–अलग प्रकार की जमीन थी और अपनी जमीन से किसान का गहरा लगाव तो सर्वविदित है। भ्रष्टाचार के दो प्रमुख कारण थे। इन दो कारणों ने चकबंदी कर्मचारियों को अवैध लाभ अर्जित करने के पर्याप्त अवसर प्रदान किये परन्तु चरण सिंह ने योजना के इस पहलू पर कड़ी निगरानी रखी। विरोधी पक्ष ने विधानसभा में इस तथ्य को 1958 में स्वीकृत किया था (सिंह,1986 : 104)।

एक स्तर पर यह बात संदेह से परे है। चकबंदी के कार्यान्वयन के प्रति उनकी चौकसी विवाद से परे है। जन साधारण की समस्याओं की उनकी पकड़ का यह उदाहरण हो तो

दूसरी बात है (सिंह, 1986 : 103) परन्तु इसके तहत लोकरंजकता अर्जित करने की लफ्फाजी ,क्योंकि अधिकांश लाभ पश्चिमी उत्तर प्रदेश के धनी एवं मध्यम किसानों को ही प्राप्त हुआ।

(ज) भूमिकर का विरोध

सातवें दशक में धनी किसान उत्तरी–पश्चिमी भारत में प्रबल शक्तिशाली वर्ग के रूप में उभरे। चरण सिंह बड़ी चालाकी और पूरी शक्ति के साथ सफलतापूर्वक धनी एवं मध्यम किसानों के हितों का प्रतिनिधित्व करते रहे। हमारा विवेचन अब तक ग्रामीण अंचल में किये गये संघर्ष पर केन्द्रित रहा। इस संघर्ष की टक्कर शहरी तबकों और केन्द्रीय सरकार के साथ हुई। ऐसा स्पष्टतः कर तथा अनाज की वसूली दो महत्वपूर्ण मोर्चे पर हुआ।

स्वातंत्र्योत्तर भारत की राजनीतिक अर्थनीति के सामने एक संगीन मुद्दा यह था कि भारतीय राज्य कृषि पर पर्याप्त कर नहीं लगा सका और खासकर कृषि के अन्तर्गत धनी किसान तथा उनके साथ अन्य प्रभुत्वशाली वर्ग, प्रधानतः जमींदारों, पर पर्याप्त कर नहीं लगाया जा सका। इस प्रश्न ने पर्याप्त ध्यान आकर्षित किया है। आठवें दशक के मध्य तक इस समस्या के बारे में प्राप्त साक्ष्य के आधार पर देखें बायर्स द्वारा प्रस्तुत संक्षिप्त विवेचन (1979 : 224–7)। इसका हल अभी तक नहीं निकला। जैसा कि हाल में एक आधिकारिक समीक्षक ने लिखा–

''राज्यों के दीर्घालिक आर्थिक संकट का मुख्य कारण यह है कि वे अपनी आय बढ़ाने के लिए कृषि क्षेत्र पर कर लगाने में संकोच करते रहे। वितरण की दृष्टि से धनी किसानों को ही अधिक लाभ प्राप्त हुआ है।'' (चक्रवर्ती, 1987 : 49 रेखांकन मौलिक)।

भारतीय राज्यें की इस प्रकार की अनिच्छा को 'असमर्थता' ही कहना उचित होगा और आज की यह असमर्थता विगत के चरण सिंह के कुशल विरोध से अनुस्यूत है।

ऐसा संकेत किया गया है कि जब 1962 में वे कांग्रेस मत्रिमंडल में कृषि मंत्री थे तो कांग्रेस समर्थित एवं प्रस्तावित भूमिकर में वृद्धि का विरोध करने में उन्होंने महत्वपूर्ण भूमिका अदा की थी (डंकन 1979 : 2)। [प्रयासाधीन इस भूमिका के लिए ब्रास को भी पढ़ें (1980ए : 388 और 422); ब्रास (1968 : 112), ब्रास (1984 : 309–12)] । अधिक ठीक–ठीक कहा जाए तो चरण सिंह की भूमिका संगीन थी।

पिछली बातों का स्मरण करते हुए चरण सिंह बताते हैं कि उस साल यू0पी0 के तत्कालीन कांग्रेस मुख्यमंत्री सी0बी0 गुप्ता ने भूमि–कर में 50 प्रतिशत वृद्धि का प्रस्ताव रखा (सिंह, 1986 : 151)। चरण सिंह ने तत्पर निर्णयात्मक कदम उठाया। उस वृतांत का वे संक्षिप्त किन्तु मार्मिक बयान इस प्रकार करते हैं –

चरण सिंह ने इस प्रस्ताव का जोरदार विरोध किया और 29 सितम्बर 1962 को मुख्यमंत्री को प्रस्तुत एक गोपनीय नोट या स्मरण पत्र में अपना बौद्धिक विरोध व्यक्त किया। मामला योजना आयोग तथा नई दिल्ली में विराजमान कांग्रेस नेताओं तक पहुंचा। अंत में इस प्रस्ताव को छोड़ना पड़ा (वहीं उद्धृत)।

धनी एवं मध्यम किसानों की ओर से चरण सिंह को अद्भुत सफलता मिल गई।

भूमिकरों में प्रस्तावित वृद्धि का विरोध इसलिए सफल हुआ कि एक तो चरण सिंह सके कुशल अधिवक्ता रहे; दूसरे, उन्होंने बड़ी दक्षता से रानैतिक चालें चलीं, सी0बी0 गुप्ता को प्रस्तुत अपने लम्बे स्मरण–पत्र में उन्होंने जिस मामले की दलील प्रस्तुत की, उसमें साक्ष्य को

बड़ी होशियारी से एकत्र किया गया, विशिष्ट तर्क पद्धति प्रस्तुत की गई तथा अन्य बातों के अलावा स्पष्ट राजनैतिक चेतावनी दी गई।

इसमें करों के आंकड़े तथा व्यापार से सम्बद्ध अन्तर अनुभागीय शर्तें यह दिखाने के लिए दी गई हैं कि कृषि क्षेत्र परम्परा से नुकसान उठाने की स्थिति में है। किसानों पर पहले से ही काफी कर लगा हुआ है और वे अधिक भार वहन नहीं कर सकते। और यह भी तर्क दिया गया कि भूमि–कर प्रतिगामी है, अपेक्षाकृत कम सम्पन्न लोगों को यह भारी पड़ता है। कृषि से सम्बद्ध आयकर की योजना ज्यादा ठीक रहेगी। चेतावनी दी गई है कि कर–वृद्धि से किसानों पर हतोत्साहक असर पड़ेगा और कृषि उत्पादन पर बुरा प्रभाव पड़ेगा। कर बढ़ाने की अपेक्षा अतिरिक्त राजस्व प्राप्त की अन्य संभावनाओं पर इसके अन्तर्गत सुझाव दिये गये हैं। उदाहरण के लिए मद्य निषेध को समाप्त किया जाए, क्योंकि मद्य निषेध से राज्य कीमती राजस्व से वंचित हो जाता है। बार–बार होने वाली प्राकृतिक आपदाओं से उत्पन्न कृषि समस्याओं का संकेत दिया गया है तथा इस स्थिति से उत्पन्न अपरिहार्य ऋणग्रस्तता का भी संकेत है। ग्रामीण अंचल में व्याप्त गरीबी को इसने रेखांकित किया है। भारत के अन्य राज्यों, विशेषकर पंजाब के साथ तुलना की गई है। यह दिखाया गया है कि वहां के किसान यू0पी0 के किसानों से अपेक्षाकृत अधिक लाभ की स्थिति में हैं।

जो अन्तर यू0पी0 के गांवों में था तथा जो लाभ धनी एवं मध्यम किसानों को प्राप्त थे, चरण सिंह उनकी उपेक्षा करते हैं और उन कठिनाइयों पर ध्यान केन्द्रित करते हैं जिनका अनुभव खेतिहर मजदूर और गरीब किसान कर रहे थे। जिस कृषिपरक आयकर की उन्होंने कल्पना की यदि उसे लागू किया गया तो उनका विरोध कम शक्तिशाली न होगा, ऐसी चर्चा वे नहीं करते। कालान्तर में अभिहित 'शहरी पूर्वाग्रह' के भूत को वे जगाते हैं। [देखें लिप्टन (1977) और आलोचनापूर्ण टिप्पणी के लिए बायर्स (1979)] विशिष्ट तर्क पद्धति वाला यह एक प्रभावशाली बयान है। इस प्रकार के हथकंडों में वे माहिर थे। उक्त बातों की व्यापक दलीलें दी गई हैं। पर जिस बेबाक तरीके से चरण सिंह ने अपने स्मरण पत्र में दलील दी है उसका राजनैतिक कारण होगा, क्योंकि उनके तर्कों से कांग्रेसी राजनीतिज्ञ आश्वस्त हुए थे। उनका कहना है –

उत्तर प्रदेश के काश्तकारों की संख्या किसी भी भारतीय राज्य के काश्तकारों से बहुत बड़ी है– 67.45 प्रतिशत, और वे ग्रामीण मतदाताओं के 77 प्रतिशत हैं। बिल के 50 प्रतिशत समर्थकों की बात तो अलग है (सिंह, 1986 : 179)। इससे अधिक स्पष्ट और क्या हो सकता है। वे फिर लिखते हैं –

प्रस्तावित भूमि–कर वृद्धि से कृषक कांग्रेस संस्था के प्रति उसी मात्रा में प्रतिकूल रहेंगे, जितनी मात्रा में वे जमींदारी उन्मूलन तथा भूमि–सुधार कानून के लागू होने पर उसके अनुकूल हुए थे। जो साथी विपरीत राय वाले हैं उन्हें यहां पर महज तर्क आश्वस्त नहीं करेंगे। पर यह अकाट्य है कि इस कदम से कांग्रेस का राजनैतिक भविष्य असंशोधनीय तरीके से खराब हो जायेगा। इसको लागू करना मानो राजनैतिक आत्महत्या (हाराकिरि) करना है (सिंह, 1986 : 179–9)।

प्रथम बार अपने घटकों पर ध्यान केन्द्रित करते हुए उन्होंने आक्रामक ढंग से कहा, ''देहात में 12.5 एकड़ से अधिक भूमि के मालिक कराजनैतिक रूप से प्रभावशली हैं। इस प्रभव को भविष्य में हमारी हानि के बावजूद इस्तेमाल किया जायेगा।'' (सिंह, 1986 : 188)।

इससे अधिक जोरदार तर्क और क्या होगा। शेष जो भी हो, उनके कांग्रेसी साथी उपेक्षित कर दिये गये होंगे। परन्तु इस पर उन्होंने अपना ध्यान आश्चर्यजनक रूप से केन्द्रित किया।

कर वृद्धि को पेश नहीं किया गया। एक सुविचारित अध्ययन जो 1973 में प्रकाशित हुआ और जिसमें उत्तर प्रदेश में 1966 तक लगाये गये कृषिकरों की जांच की गई है, यह निष्कर्ष प्रस्तुत करता है–

इस प्रांत में कृषि क्षेत्र के अन्तर्गत अतिरिक्त करों की बहत बड़ी गुंजाइश है। इसके साथ इतना और जोड़ दिया जाए कि कुल कर योग्य क्षमता का 50 प्रतिशत से अधिक (क्षमता) उनकी है जिनके पास 20 एकड़ से ऊपर भू–सम्पत्ति है (द्विवेदी 1973 : 148)।

चरण सिंह ने सम्पन्न किसानों पर टैक्स लगाने के प्रयत्न के खिलाफ अत्यंत कारगर तरीके से संघर्ष किया। आज तक यू0पी0 के धनी किसान और उन्हीं की स्थिति से आगे निकले सम्पन्न पूंजीपति किसान कारगर प्रत्यक्ष करों से बचे हुए हैं।

(झ) अनाज वसूली

जब 1967 में चरण सिंह ने संविद सरकार के मुख्यमंत्री पद को ग्रहण किया तो केन्द्रीय सरकार द्वारा निश्चयात्मक तरीके से थोपे जाने वाली अनाज वसूली का उन्होंने सामना किया।

धनी किसानों तथा उससे थोड़ा कम मध्यम किसानों के हितों की स्थिति खतरे में थी। समस्त कृषक वर्ग के हित चिंतन की बात के तहत इन तबकों (धनी कृषक) के प्रतिनिधित्व को छिपाना बहुत कठिन था। निरन्तर बढ़ती हुई सामाजिक मतभेदों की प्रक्रिया अब यू0पी0 कृषक समाज में चौड़ी दरारें बना रही थी और ऐसा विशेष रूप से पश्चिमी उत्तर प्रदेश में हो रहा था। विभिन्न वर्ग–हित अब और भी मुखरित रूप से उभर रहे थे।

छठे दशक के आरंभिक वर्षों से ही भारत शहरी मांग को पूरा करने के लिए अमेरिका से लगातार अनाज का आयात कर रहा था। उत्पादन के मुकाबले में आयात बढ़ता रहा और 1965–66 में संकटापन्न स्थिति में पहुंच गया।[18] 1964–65 में बहुत अच्छी फसल हुई, परन्तु 1965–66 और 1966–67 में प्रतिकूल मानसून की वजह से उत्पादन बहुत कम हुआ और उसके भयंकर परिणाम निकले। अनाज के मामले में भारत बहुत बड़ी मात्रा में अमेरिका पर ही निर्भर रहा। भारत ने कृत–संकल्प होकर अत्यंत प्रभावशाली तरीके से अन्न का उत्पादन बढ़ाना चाहा और भारत के अन्दर पैदा अनाज की मात्रा को बढ़ाकर बचत की स्थिति तक पहुंचाना चाहा। तुरन्त कार्यवाही करने की आवश्यकता थी। प्रथम के अन्तर्गत 'हरित क्रांति' की योजना को फलीभूत होने में देर लगी। दूसरे के अन्तर्गत शीघ्र अर्जनीय परिणामों की आवश्यकता थी। इस मामले में केन्द्रीय सरकार का संकल्प दृढ़ था।

भारत की अधिकांश मंडिया निजी व्यापार के अधीन थीं। अतिरिक्त अनाज को व्यापारी उत्पादकों से थोक के भाव से सीधे ही खरीद लेते थे। तदन्तर उसे शहरी और ग्रामीण उपभोक्ताओं को बेचते थे। उत्पादक और शहरी एवं ग्रामीण उपभोक्ताओं का शोषण करने, कृत्रिम अभाव पैदा करने और प्राकृतिक कमियों को बढ़ावा देने के कारण व्यापारियों को अपयश मिला। अनाज की कीमतें बढ़ाने में भी व्यापारियों का हाथ था। एक शक्तिशाली वर्ग के रूप में ऐसे व्यापारी भारत भर में फैले हुए थे।

राज्यों से केन्द्रीय सरकार द्वारा अनाज की वसूली काफी समय से बहस का मुद्दा बनी हुई थी। समय–समय पर विभिन्न कदम उठाये गये और अनेक संभावनाएं दृष्टिगत हुईं।

एक समाधान था– अन्न व्यापार का राष्ट्रीयकरण। 1957 की फूडग्रेन्स इन्क्वायरी कमेटी (मेहता कमेटी, गवर्नमेंट ऑफ इंडिया, 1957) की मुख्य सिफारिश थी कि अनाज के व्यापार का 'समाजीकरण' किया जाये, अर्थात उसे निजी व्यपारियों के हाथ से निकाला जाए। भारतीय राज्य इस लक्ष्य को स्वीकृत करने के पक्ष में था। अखिल भारतीय अनाज व्यापारियों की संगठित शक्ति के बावजूद वह इस दिशा में बढ़ने की कोशिश करता दिखाई दिया। अनाज वसूली का एक लम्बा इतिहास पहले से मौजूद था। भारत भर में अनाज की खरीद, बिक्री तथा वितरण के लिए जनवरी 1965 में भारतीय खाद्य निगम की स्थापना हुई। उसी वक्त उचित मूल्य निर्धारण की नीति अपनाने के लिए एग्रीकल्चरल प्राइसेज कमीशन की भी नियुक्ति हुई।

यदि राज्य को निगम के माध्यम से अन्न की वसूली करनी थी तो ऐसा वह अनावश्यक करों के जरिये या व्यापारियों के साथ प्रतियोगिता करके कर सकता था। राज्य सिद्धांततः अतिरिक्त अनाज की वसूली थोक व्यपारियों अथवा सीधे उत्पादकों से कर सकता था। दूसरा तरीका पहले अख्तियार किया गया था। परन्तु अनाज के मामले में सट्टेबाजी, जमाखोरी तथा थोक व्र्यापार पर प्रहार करने की प्रमुख आवश्यकता थी। सातवें दशक के मध्य तक कुछ परिवर्तन नजर आया। व्यापारियों तथा थोक व्यापार को अपराध की परिधि से मुक्त नहीं रखा गया, परन्तु अब ध्यान इस ओर गया कि केवल व्यापारी ही अपराधी नहीं हैं। वस्तुतः पूर्व निर्धारित नीति से बहुत कम सफलता मिली, क्योंकि पहले के अतिरिक्त अनाज के आंकड़ों को देखते हुए अतिरिक्त अनाज के समाजीकरण की प्रगति नजर नहीं आती थी। (कृष्णा, 1967 : 1697)।[19] यह तय किया गया कि थोक बाजार के स्तर पर अनाज की वसूली अब कारगर नहीं हो सकती और सीधी वसूली उनसे की जानी चाहिए जिन उत्पादकों के कपास बेचने और जमा करने की काफी गुंजाइश है। इस पृष्ठभूमि के तहत राष्ट्रीय संकट की स्थिति में चरण सिंह ने कारगर ढंग से कदम बढ़ाया।[20]

1964 से उत्तर प्रदेश सरकार पर अनाज की वसूली में सुधार लाने के लिए दबाव डाला जा रहा था। आयातित गेहूॅं पर यू0पी0 की निर्भरता का अर्थ यह आग्रह था कि उसे अनाज वसूली कार्यक्रम को सुधारना ही पड़ेगा। मार्च 1966 में यू0पी0 के कांग्रेसी खाद्य मंत्री ने थोक व्यापारियों से अनाज वसूली योजना के तहत सीधी कर वसूली का नोटिस जारी किया। केन्द्रीय सरकार उत्पादकों से सीधी वसूली करना चाहती थी, अतः उसने उक्त योजना को छोड़ना चाहा। 1967 के आरम्भ में अनाज की बहुत बड़ी कमी हो गई। यू0पी0 में 1966 में उत्पादकों से सीधी वसूली की कोई योजना नहीं थी। मार्च 1967 में नवनिर्वाचित कांग्रेस सरकार ने यह घोषणा की कि उत्पादकों पर लेवी लगाने की शुरूआत की जायेगी।[21]

पहली अप्रैल के दिन काग्रेस सरकार गिर गई और चरण सिंह नये मुख्यमंत्री बने। चौथे दशक के दिनों की व्यापारियों की शोषक गतिविधियों के प्रति उनका रोष समाप्त हो चुका था। ऐसा एकदम से भिन्न परिस्थितियों की वजह से था जिसके अन्तर्गत धनी किसान अपने हितों की रक्षा स्वयं कर सकते थे। भारी कर्ज में डूबे गरीब किसान, जिनके पास जमा करने की क्षमता नहीं थी, दयनीय रूप से गरीब बने रहे और चरण सिंह के अनुसार 'व्यापारी की खूंखार प्रवृत्ति' के शिकार बने रहे (डंकन, 1979 : 4)। मध्यम किसानों की स्थिति भी नाजुक थी।

परन्तु धनी किसान मजे में थे; क्योंकि सरकार प्रदत्त सस्ते दरों पर ऋण तथा सस्ते कृषि उपकरणों (बीच आदि) को सुलभ करके उन्हें जमा करने की क्षमता विकसित कर ली थी और बाजार के अनुभव के आधार पर सड्टेबाजी की प्रवृत्ति अपना ली थी।

चरण सिंह दविधाग्रस्त थे। वे किसी प्रकार की वसूली की नीति को पसंद नहीं करते थे। हाल के वर्षों में उन्होंने सरकारी हस्तक्षेप का विरोध किया था। पर इस प्रकार की नीति को अपनाने के लिए उन पर जो दबाव पड़ रहा था उसे रोका न जा सका। व्यापारियों के हित–रक्षण की चिंता उन्हें स्पष्टतः नहीं थी। यदि वसूली की योजना उन पर लादी गई तो वे थोक व्यापार की ओर ध्यान देना पसंद करेंगे। उन्होंने मुक्त बाजार तथा किसान द्वारा बाजार स्थिति का अपने हक में अधिक से अधिक लाभ उठाने की बात को पसंद किया था (डंकन, 1979 : 7)। परन्तु केन्द्रीय सरकार इस बात के लिए कृत–संकल्प थी कि उत्पादकों से सीधे तथा आवश्यक रूप से वसूली की जाए। चरण सिंह ने समझौतावादी रास्ता अपनाया।

उन्होंने भूतपूर्व कांग्रेस प्रशासन द्वारा लागू की गई योजना को संशोधित किया और इस बात की सावधानी बरती कि असाधारण परिस्थितियों के कारण उन्हें इस दिशा में केवल सीमित कार्यवाही करनी चाहिए (डंकन, 1979 : 7)। इस सीमित कार्यवाही के तहत आठ एकड़ और उससे ऊपर की भू–सम्पत्तियों पर लेबी लगाई गई। फिर उसे क्रमशः बढ़ाकर 25 एकड़ तक किया गया तथा सारे प्रांत में क्रय केन्द्र स्थापित किये गये (वहीं उद्धृत)। इस बात पर बड़ा हल्ला हुआ कि वसूली के लिए केवल आठ एकड़ भूसम्पत्ति की सीमा रखी गई है। केवल अल्पसंख्यक सम्पन्न किसान ही इसके अन्तर्गत आते थे (डंकन 1979 : 8)। उस पर भी धनी किसानों को खुश करने के लिए भूमि की इस सीमा को कदाचित ही मापा जाता था। दूसरे पहलुओं की दृष्टि से इस योजना का अर्थ था समझौता, जो व्यवहार में धनी किसानों के लिए नुकसानदेह नहीं था।

शुरू से ही इस योजना से जुड़ी थीं अनेक प्रकार की रियायतें। उदाहरणार्थ, अकालग्रस्त क्षेत्र इस योजना से मुक्त थे। जिन किसानों ने पूरी भूमि नहीं जोती उनसे कम वसूली होती थी और लेवी की दरों के प्रति आपत्ति दर्ज करने के लिए पर्याप्त समय दिया जाता था। इसके अतिरिक्त जो किसान अपनी फसल लाते उन्हें सरकार ने सीमेंट, चीनी और लोहे की चादरें उपलब्ध कराईं (डंकन, 1979 : 8)।

चरण सिंह ने इस योजना के दो अन्य पहलुओं पर जोर दिया। एक; किसी भी भूसम्पत्ति के विक्रय योग्य बचत का केवल अल्पांश ही आवश्यक रूप से वसूल किया जाए। और दूसरा, 80 और 85 रुपये प्रति क्विंटल कीमत की दर ऊंची समझी जाए (डंकन, 1979 : 7–8)। बहुत से किसानों की बचत सामान्य होती थी। उन्हें सरकारी क्रय केन्द्रों ने अनाज व्यापारियों की अपेक्षा अनाज की बेहतर दरें सुलभ कराईं (डंकन, 1979 : 8)।

संक्षेप में, चरण सिंह योजना के क्रियान्वयन की शर्तों पर नियंत्रण रखते हुए (डंकन, 1979 : 8) यह तर्क दे सकते थे कि वे राज्य के बहुसंख्यक किसानों का हित रक्षण कर रहे थे। (वहीं उद्घृत) और साथ में वे धनी किसानों को भी खुश कर रहे थे। इतना ही नहीं, योजना के अन्तर्गत आय स्त्रोतों का संचालन धनी किसानों की सुविधा के अनुसार किया गया।

वस्तुतः वे इस प्रकार की योजना का सूत्रपात कर रहे थे जो बाद में धनी किसानों के लिए लाभप्रद सिद्ध होती। अगले दशक में,विशेषकर पश्चिमी उत्तर प्रदेश के क्षेत्रों में, न्यूनतम समर्थन दरों तथा वसूली की दरों के माध्यम से कृषि क्षेत्र के लिए जो निर्धारित कीमतें लागू

की गईं उनके आधार पर कृषि उपज की कीमतें लगातार बढ़ती रहीं। (मित्रा, 1977 : 110–11) केन्द्रीय सरकार के दबाव पर चरण सिंह ने जो वसूली योजना जारी की उसने इस प्रकार के तंत्र और विधि को पैदा किया जिनके आधार पर मूल उद्देश्य के विपरीत किसी अन्य परिणाम की प्राप्ति होनी थी– अतिरिक्त उत्पादन के लिए दृढ़ क्षमता धारण करना और कीमतों का बढ़ते रहना।[22] इस तरह के परिणाम का चरण सिंह का इरादा रहा होगा, संदेहास्पद है। दूसरी ओर राजनैतिक रूप से खतरनाक स्थिति को वे अपनी राजनैतिक दक्षता के आधार पर समाप्त करना चाहते थे। ऐसा उन्होंने सफलतापूर्वक किया। उन्होंने एक ऐसे परिणाम को लाने में योगदान किया जो अन्ततः धनी किसानों के लिए बड़े काम का निकला।

(~f) राष्ट्रीय मंच : किसान रैली तथा कुलक बजट

आठवें दशक में चरण सिंह राष्ट्रीय मंच पर आसीन थे। वे 1977–78 में जनता सरकार के गृहमंत्री थे। तदन्तर उन्हें इस्तीफा देने के लिए मजबूर किया गया। मंत्रिमंडल से उनके निष्कासन (पिंग, 1979ए : 53) के बाद उन्होंने इस सशक्त सम्भावना के साथ उत्तरी भारत के व्यापक किसान समर्थन का इस्तेमाल किया कि कालान्तर में यह समर्थन भारत के अन्य भागों में भी फैलेगा– उस समय चल रहे राजनैतिक उठा–पटक में यह डेमोक्लीज की तलवार की तरह था। इस्तीफे के सात माह बाद अपनी राजनैतिक चालों में मोरारजी देसाई तथा अन्य जनता नेताओं, जिनसे से अलग हो गये थे, के साथ बर्ताव करते समय उन्होंने विशाल किसान रैली के माध्यम से व्यापक किसान संगठन की प्रबल संभावना का इस्तेमाल किया।

रैली से पूर्व जो सुनियोजित अभियान चलाया गया उसके तहत चरण सिंह के लेफ्टिनेंटों ने बताया कि रैली में एक करोड़ किसान भाग लेंगे (दि हिन्दू, 17 अक्टूबर 1978)। 7 जुलाई 1978 के दिन स्वयं चरण सिंह ने एक भाषण में श्रोताओं, जिनमें दिल्ली के आसपास के हट्टे–कट्टे किसान भी थे, से कहा कि प्रस्तावित रैली ने तमिलनाडु, बंगाल, उड़ीसा आदि भारत के सभी स्थानों के किसानों को प्रोत्साहित किया है (दि हिन्दू, 8 जुलाई 1978)। शायद ही किसी ने इस बात की संभावना को गंभीरतापूर्वक लिया हो कि दिल्ली में एक करोड़ किसान एकत्र हो सकते हैं, उसी तरह यह भी स्पष्ट है कि चरण सिह को राष्ट्रव्यापी समर्थन प्राप्त नहीं हुआ था। परन्तु इस बात को नकारा भी नहीं जा सकता कि उस समय एक प्रकार की दहशत–सी फैली हुई थी कि कब क्या हो जाये।

चरण सिंह के 76वें जन्म दिवस पर 23 दिसम्ब्र 1978 के दिन दिल्ली में किसान रैली हई। एक करोड़ किसान तो नहीं एकत्र हुए; हॉ, दस लाख होंगे। राजधानी के इतिहास में यह सबसे बड़ी रैली होगी (पिंग, 1979ए : 53)। उत्तरी भारत के बाहर से ज्यादा किसान नहीं आये थे। परन्तु चरण सिंह के अलावा जिन्होंने रैली को सम्बोधित किया, वे थे– पंजाब के मुख्यमंत्री पी0एस0 बादल, यू0पी0 के राम नरेश यादव, हरियाणा के देवीलाल तथा बिहार के मुख्यमंत्री कर्पूरी ठाकुर; और कर्नाटक के मुख्यमंत्री देवराज अर्स ने रैली के समर्थन में संदेश भेजा (दि हिन्दू, 24 दिसम्बर, 1978)।

कुल मिलाकर और क्षेत्रीय आधार पर भी यह बहुत बड़ी संख्या थी। इससे जोरदार असर पड़ा। चरण सिंह और उनके घटकों को मानना पड़ा। जनता पार्टी के अन्दर भी यही धारणा बनी। यह इस बात से संकेतित होता है कि किसान रैली के तुरन्त बाद 24 जनवरी

1979 के दिन चरण सिंह भारत के वित्त मंत्री तथा वरिष्ठ उप–प्रधानमंत्री बन गये (दि हिन्दू, 25 जनवरी, 1979)।

किसान रौली का नारा लोकरंजकतावाद के बिम्ब पर आधारित था। इसने शहरी विरोध को उभारा, जिसके चरण सिंह अनेक वर्षों से प्रबल समर्थक थे। (हालांकि इस बात को उन्होंने व्यक्त नहीं किया था)। 'आज भारतवर्ष के गांव शहर के उपनिवेश हैं' (पींग, 1979ए : 53)। एक समीक्षक ने यह सही तरीके से भांपा कि रैली शक्तिशाली राजनैतिक शक्ति के रूप में कुलक वर्ग की परिपक्वता का प्रतीक थी (पिंग, 1979 ए :53)। इस परिपक्वता को लाने में चरण सिंह ने प्रभावशाली भूमिका अदा की। अब वे धनी किसानों के श्रेष्ठ राजनैतिक प्रतिनिधि, वैचारिक नेता, विपक्ष के प्रबल विरोधी और दक्ष राजनीतिज्ञ थे।

शहरी बुद्धिजीवी यह नहीं समझ सके कि चरण सिंह को किस रूप में देखा जाए। राष्ट्रीय मंच पर उभरते हुए वे किसानों की अपार संख्या के साथ शहरी भारत को आक्रांत कर रहे थे। उदाहरणार्थ, रोमेश थापर ने देखा कि राष्ट्रीय मूल्यांकन के आधार पर चरण सिंह बहुत ज्यादा विश्वसनीय नहीं हैं। आर्थिक–राजनैतिक मीमांसा के आधार पर वे अत्यंत अस्थिर स्वभाव के और असंतुलित सामान्यीकरण पर विश्वास करने वाले व्यक्ति हैं (थापर, 1979 : 175)। थापर ने तत्कालीन उद्योग मंत्री जॉर्ज फर्नांडीस को अधिक सुस्थिर दृष्टि से देखा था। जो चरण सिंह के लेखन से अपरिचित थे, उन्होंने उनको 'अस्थिर' तथा 'असंतुलित' समझाा होगा। दरअसल जैसा हम अगले भाग में देखेंगे कि चालीस वर्षों में फैले उनके तर्कों की एकतानता और संगति अद्भुत थी। चरण सिंह कोई अस्थिर, ग्रामीण विदूषक नहीं थे।

रोमेश थापर की एक बात बिल्कुल ठीक है कि चरण सिंह किसानों के लिए बजट बनाने के कार्य में जुट जाने वाले थे (थापर, 1979 : 175)। शायद ऐसी भविष्यवाणी करना मुश्किल बात नहीं थी।

चरण सिंह उक्त कार्य में जुट गये और उन्होंने मार्च 1979 में अपना बजट प्रस्तुत किया जिसमें जनता की सांस और धरती की सुगंध थी (पिंग, 1979 सी : 76)। लोकरंजकतावाद का बिम्ब पुनः स्पष्ट था। और भी अधिक, यथार्थपरक दृष्टि से देखा जाए तो कुछ भारतीय समाचार–पत्रों के अनुसार इसे 'कुलक बजट' कहा गया। ऐसा वर्णन सही है। इसके अनुसार रासायनिक खाद पर टैक्स घटाकर आधा कर दिया गया। मशीनी हलों, हल्का डीजल तेल (बिजली से चलने वाले पानी के पम्पों के लिए), प्लास्टिक पी0वी0सी0 पाइप (सिंचाई के लिए) आदि पर कर या तो समाप्त कर दिया गया या कम कर दिया गया। एग्रीकल्चरल रिफाइनेंस एण्ड डेवलॅपमेंट कारपोरेशन पर इस इरादे से आयकर हटा दिया गया कि इससे जो बचत होगी वह ब्याज की निम्न दरों के रूप में कर्ज लेने वालों के काम आयेगी। ग्रामीणों को ऋण देने के संदर्भ में व्यापारिक बैंकों को रियायतें दी गईं, बड़े फार्मों के लिए लघु सिंचाई योजना के तहत वित्तीय सहायता दी गई। डेरियों, ग्रामीण विद्युतीकरण, अनाज भंडारण सुविधाओं के लिए धनराशि बढ़ाई गई (पिंग, 1979 सी : 76)। ये सारे लाभ सर्वाधिक रूप में धनी किसानों तथा उभरते हुए पूंजीपति किसानों को मिलने थे। इसे चाहे किसी भी आकर्षक तरीके से सजाया गया हो परन्तु इसकी असलियत बिल्कुल स्पष्ट थी।

(ट) चरण सिंह तथा वर्ग एवं जाति आधार के आत्यन्तिक स्वर

चरण सिंह के बौद्धिक व्यवहार पर विचार करने के पूर्व उनकी राजनीति की निश्चित विशेषताओं पर ध्यान देना जरूरी है, जो किसान रैली तथा उसके उपरांत उभरे थे। इनका सम्बंध वर्ग तथा जाति की परस्पर व्याप्ति से है।

ब्राह्मण तथा उनके द्वारा स्थापित सामाजिक व्यवस्था के प्रति उनकी नफरत के बारे में मैं बता चुका हूँ। जब वे राष्ट्रीय राजनीतिक मंच पर प्रख्यात रू॰ से आसानी हो चुके थे तो एक भूतपूर्व सहयोगी ने यह बताया, ''मेरी शंका है कि चरण सिह वामपंथियों से इसलिए नफरत करते थे कि उनमें से अधिकांश ब्राह्मण थे'' (वही उद्‌घृत)। नेहरू तथा इंदिरा गांधी के प्रति उनकी नफरत अंशतः सलिए थी कि उनका सम्बंध कुलीन ब्राह्मण पृष्ठभूमि से था (नायक, 1979 : 32)। चरण सिंह ने ब्राह्मणों के प्रति अपनी नफरत को अव्यक्त नहीं रहने दिया। इसका जो भी स्त्रोत रहा हा; उनकी यह नफरत बनी रही।

वर्ग और जाति सम्बंधी बातें परस्पर व्याप्त होती हैं और वर्ग क्रम के किसी अन्य छोर पर एकाकार हो जाती है। चरण सिंह को 'कृषक समुदाय' तथा निर्धन ग्रामीणों की बड़ी चिंता थी। परन्तु जैसा किसान रैली के अवसर पर देखा गया ''वे स्पष्ट रूप से निधन ग्रामीणों के सबसे बड़े तबके खेतिहर मजदूरों को पहचानते भी नहीं थे'' (अनाम, 1987 : 2053)। जहां तक खेतिहर मजदूरों की उनके लेखन, भाषणों और राजनैतिक कार्यक्रमों में चर्चा तक नहीं, वहां तक यह बात सच है, परन्तु एक दूसरे स्तर पर निश्चित रूप से एक विशाल बढ़ते हुए वर्ग के रूप में उन्होंने उनके अस्तित्व को मान्यता दी और उन्हें उस कृषक समुदाय का विरोधी समझा, जिसका वे प्रतिनिधित्व करते थे।

जब खेतिहर मजदूरों और बहुत गरीब किसानों (अक्सर बटाईदार) के बारे में आग्रहपूर्वक पूछा जाता तो वे कदाचित अपना मौन भंग करते। जब पूछा जाता कि जिनके पास कोई जमीन नहीं, ऐसे भूमिहीन लोगों के बारे में आपको क्या कहना है तो उनका उत्तर हतोत्साहक और दुराग्रहपूर्ण होता।

''हॉ, यदि कोई व्यक्ति भूमिहीन है तो उसे किसान नहीं कहा जा सकता। ऐसा व्यक्ति मजदूर है, यदि आप उसे जमीन देना चाहें तो उसे देने योग्य जमीन है कहां?''(पिंग, 1979 बी : 8)।

यही तर्क गरीब किसानों पर भी लागू किया गया। यदि गरीब किसान को देने के लिए कोई जमीन नहीं है तो उसकी क्या परवाह। किसान सम्मेलन, जिसने किसान रैली आयोजित की और जो चरण सिंह की विचारधारा पर चलता था, ने किसी प्रकार के भूमि पुनर्वितरण का डटकर विरोध किया (पिंग, 1979 ए : 55)। अपनी किसी भी गतिविधि के दौरान चरण सिंह कम अस्थिर या अधिक दुराग्रही नहीं थे।

जैसा पहले ही बता दिया गया है बहुसंख्यक खेतिहर मजदूर अछूत है। अक्टूबर 1978 में जब चरण सिंह किसान रैली की तैयारी कर रहे थे तो ऐसा बताया गया कि हरियाणा के दो वरिष्ठ असंतुष्ट नेता रिजक राम और स्वामी अग्निवेश ने रैली के आयोजन के ढंग को गलत बताया। उन्होंने कहा, ''यदि किसान सरकार के खिलाफ अपनी शिकायतें व्यक्त करने के लिए रैली करते हैं तो ठीक है परन्तु प्रस्तावित किसान रैली ने किसान और हरिजनों के मध्य संघर्ष का रूप अख्तियार कर लिया है'' (दि हिन्दू, 17 अक्टूबर 1978)।

इस बात का प्रतिवाद किया गया क्योंकि खुले आम इस यथार्थ को स्वीकार करना अत्यंत खतरनाक सिद्ध होता। बताया जाता है कि किसान रैली में ही चरण सिंह ने अपने और

किसान सम्मेलन के प्रति लगाये गये आरोप का खंडन किया (कि वे हरिजन विरोधी हैं)। (दि हिन्दू, वहीं उद्धृत) यह खंडन तो जोरदार था और न आश्वस्त करने वाला। उन्होंने कहा, ''हरिजनों के प्रति उनकी चिंता उसी प्रकार है, जिस प्रकार उनके लिए, जो उन्हें 'हरिजन विरोधी' बताते हैं (वहीं उद्घृत)। दूसरी बार खंडन जो पुनः आश्वस्त करने वाला नहीं है, देखें– (नायक, 1979 + 31–2)। इस खंडन पर लगी चमक विशुद्ध रूप से रहस्यात्मक है। उनकी समस्याएं– सदियों से चली आई उनकी गरीबी और उनके प्रति भेदभाव इसी प्रकार की हैं जिस प्रकार पीड़ित कृषक समुदाय की। (दि हिन्दू, 24 दिसम्बर 1978)। परन्तु जो बात अव्यक्त रही वह यह है कि चरण सिंह की दुनिया में बहुसंख्यक हरिजन कृषक समाज के सदस्य हैं ही नहीं। अधिक से अधिक वे भूमिहीन खेतिहर मजदूर हैं या अत्यंत निर्धन किसान हैं। अक्सर बहुत बड़े घाटे में रहने वाले बटाईदार, जिनके हित कृषक समुदाय और विशेषकर ऐसे धनी किसानों के हितों से अलग हैं, जो खेत मजदूरों को मजदूरी पर लगाते हैं और जिनकी भूमि–लिप्सा कभी समाप्त नहीं होती। मध्यम किसानों के हित भी उनसे अलग हैं। हितों का तीव्र वैपरीत्य जो जाति और वर्ग के मिश्रण में निहित है कभी भी विस्फोटक रूप धारण कर सकता है। वस्तुतः यह अक्सर बताया जाता है कि चरण सिंह का लोकदल देहात में निर्धन और भूमिहीनों (अर्थात हरिजन) पर किये गये अनेक प्रकार के अत्याचारों के साथ जुड़ा हुआ है (ब्रास, 1984 : 330)। इस बात का प्रतिवाद इस प्रकार किया गया है–

यू0पी0 के निम्न जाति के लोगों (अर्थात् हरिजनों), गरीब तथा भूमिहीनों पर किये गये तथाकथित अत्याचारों की बारीकी से जांच करने पर ज्ञात हुआ कि इस प्रकार की घटनाओं का सम्बंध मध्यम जातियों (जैसे जाट) या लोकदल के साथ नहीं था। इस प्रकार की घटनाएं संश्लिष्टता एवं वैविध्य से मुक्त होती हैं और देहात के अन्दर वर्ग संघर्ष के साथ अपरिहार्य रूप से जुड़ी नहीं होतीं (ब्रास, 1984 : 330)।

इस प्रकार की घटनाओं की संश्लिष्टता को नकारना मूर्खता होगी। समकालीन भारत में मौजूदा जाति और वर्ग के विशिष्ट मिश्रण से या चरण सिंह मार्का राजनीति द्वारा उन्मुक्त प्रभावों से ये घटनाएं जुड़ी हुई नहीं हैं, ऐसा अभी तक सिद्ध न हो सका। परन्तु चरण सिंह का मूल्यांकन करते समय इस प्रश्न को उपेक्षित नहीं किया जा सकता। सम्भवतः भविष्य में की गई सतर्कतापूर्ण खोज इस पर अधिक प्रकाश डाल सकेगी।

V (क) चरण सिंह का बौद्धिक व्यवहार

चरण सिह के बौद्धिक गुणों का गम्भीर विश्लेशण बहुत कम हुआ है। मुझे याद है, चरण सिह की पुस्तक 'इकोनॉमिक नाइटमेयर ऑफ इंडिया ' (भारत का आर्थिक दुःस्वप्न) 1982 में लंदन में जब मेरी मेज पर पड़ी हुई थी तो सम्पन्न शहरी परिवार का कुशाग्र बुद्धि बी.ए. के अंतिम वर्ष के एक भारतीय छात्र ने यह पुस्तक हाथ में ली और अविश्वासपूर्ण मुद्रा में उसने पूछा, ''क्या इसे चरण सिंह ने स्वयं लिखा है,'' चरण सिंह के बौद्धिक गुणों की नकारात्मकता की दृष्टि से प्रश्न महत्वपूर्ण था। चरण सिंह को ''खतरनाक'' ता कहा जा सकता है पर विचारशील बुद्धिजीवी नहीं। और भी महत्वपूर्ण बात यह है कि 1978–79 के दौरान जब छह महीने के लिए मैं भारत गया और मैंने सारे देश का भ्रमण किया तो उनकी पहले वाली पुस्तक **'भारत की अर्थनीति : गांधीवादी रूपरेखा'** (सिंह, 1978) हाल में ही प्रकाशित हुई थी (इंडियन इकोनॉमिक पॉलिशी : गांध्यिन ब्लू प्रिंट) । यदि यह पुस्तक

इमरजेंसी से पूर्व तीन–चार वर्ष पहले प्रकाशित हो गई होती तो इसकी तरफ किसी का ध्यान नहीं जाता (उनकी पुस्तक 'इकोनॉमिक नाइटमेयर ऑफ इंडिया' जो 1981 में छपी, लोकदल क्षेत्र के बाहर उपेक्षित सी रही) परन्तु 1978–79 में चरण सिंह राष्ट्रीय मंच पर राष्ट्र के सर्वोच्च पद के प्रतियोगी थे। उनकी उपेक्षा कैसे हो सकती थी! मैंने इसे पढ़ा और कई लोगों से इसकी चर्चा की। एक बात जो सबने दोहराई वह थी कि उन्होंने इस पुस्तक को स्वयं नही लिखा होगा। इनमें से कुछ सुप्रसिद्ध शहरी बुद्धिजीवी थे।

यहां तक कि वे थोड़े–से विद्वान जो चरण सिंह को बौद्धिक स्तर पर गंभीरतापूर्वक समझने की कोशिश करते हैं और उनके लेखन से सुपरिचत है, चरण सिंह को बुद्धिजीवी मानने में संकोच करते हैं। उदाहरणार्थ पॉल ब्रास जिन्होंने चरण सिंह को सहानुभूतिपूर्ण ढंग से समझा और उनके बारे में पर्याप्त ज्ञान अर्जित किया, ने 1965 में कहा, ''राजनीति में चरण सिंह सटीक रूप से बुद्धिजीवी नहीं हैं; परन्तु वे बारीक बुद्धि वाले सुपठित व्यक्ति हैं और अपनी बौद्धिकता को उन्होंने यू0पी0 की कृषिमूलक समस्याओं के अनवरत अध्ययन में लगाया है।'' (ब्रास, 1965 : 139)।

निस्संदेह चरण सिंह ने अपनी 'बारीक बुद्धि' का इस्तेमाल उत्तर प्रदेश की कृषिपरक समस्याओं के अध्ययनार्थ किया। वे बुद्धिजीवी थे या नहीं, इस बात का फैसला करने के लिए ''बुद्धिजीवी'' की परिभाषा करनी होगी। इस शब्द की परिशुद्ध परिभाषाके आधार पर मेरा यह निर्णय है कि चरण सिंह स्पष्ट रूप से एक बुद्धिजीवी थे, वे असामान्य रूप से भी बुद्धिजीवी थे।

(ख) धनी एवं मध्यम किसानों के 'जैवी' (ऑरगैनिक) बुद्धिजीवी

बुद्धिजीवी को हम इस प्रकार परिभाषित कर सकते हैं– वह जो निरंतर सिद्धांतों (अमूर्तज्ञान), ब्यौरेवार विचारों या संगठित ज्ञान को सामान्य मामलों की व्याख्या करने और उन पर निर्णय देने के काम में लगाता है, जो मूर्त तथा प्रमुख विशेषताओं से युक्त विशिष्ट घटनाओं का अमूर्तन करता है (विलियम्स, 1976 : 140–42; शिल्स, 1968 : 400–402)। इस प्रकार की परिभाषा के अन्तर्गत विभिन्न संभावनाएं रहती हैं।

ऐसे बुद्धिजीवी जो अनेक प्रकार की विाटि बौद्धिक भूमिकाए अदा करते हैं, बतौर बुद्धिजीवी अधिक चर्चित नहीं होते (शिल्स, 1968 : 400) : वकील, नोटेरी, अध्यापक, पुरोहित, डॉक्टर, इंजीनियर आदि (शिल्स, 1968 : 400–402) (ग्रामस्की भी 1971 : 314)। ऐसे लोग– व्यक्ति, उसके समाज और वर्ग की इस सृष्टि में पहचान करते हैं और विभिन्न तथ्यों को व्याख्यायित करके उन्हें (तथ्यों को) नियंत्रित करते हैं (शिल्स, 1968 : 400)। इस परिभाषा के अनुसार चरण सिंह ऊंचे दर्ज के वकील थे, अतः उन्हें बद्धिजीवी कहा जा सकता है। जब ब्रास ने कहा कि चरण सिंह राजनीति में सटीक रूप से बुद्धिजीवी नही थे तो स्पष्टतः उनके मस्तिष्क में कोई और परिभाषा होगी।

और अधिक आग्रहपूर्ण तरीके से हम कह सकते हैं कि बुद्धिजीवी वह है जो बौद्धिक काम करता है (शिल्स, 1968 : 410)। अधिक स्पष्ट किया जाए तो ऐसे व्यक्ति की अपनी ''सृष्टि'' के प्रति स्पष्ट रूप से संगत एकतान और आधिकारिक दृष्टि होती है। उसके पास स्वतंत्र तथा विश्लेषक वाक्शक्ति की क्षमता तथा अपनी दृष्टि को लिखित रूप से समझाने की

विशिष्ट योग्यता होती है (हम यहां पर मौखिक परम्परा वाले समाजों की बात नहीं कर रहे हैं)। चरण सिंह इस कसौटी पर खरे उतरते थे।

चरण सिंह की सृष्टि के प्रति जो दृष्टि थी, जिन समस्याओं को उन्होंने झेला और उनके समाधान, जिन्हें लिखित रूप में समझाया गया है, पर बात करने से पहले हम एक बुद्धिजीवी के रूप में चरण सिंह की विशिष्ट और असामान्य भूमिका पर बात करना चाहते हैं। जिनसे हमें यहां पर मतलब है उन परिस्थितियों के संदर्भ में जो एक कृषक समुदाय के पूंजीवादी परिवर्तन के संघर्षपूर्ण सुदीर्घ सिलसिले से सम्बद्ध हैं, ग्रामस्की के विचार विशेष रूप से संगत हैं।

ग्रामस्की कहता है, ''बुद्धि को धारण करने और इस्तेमाल करने के अर्थ में सभी लोग बुद्धिजीवी होते हैं, परन्तु सामाजिक क्रिया–कलाप के आधार पर सभी बुद्धिजीवी नहीं होते।'' ठीक इसी अर्थ में– सामाजिक कार्य व्यापार के आधार पर बुद्धिजीवी– चरण सिंह ने बौद्धिक स्तर पर काम किया। ये ऐसे बुद्धिजीवी हैं जो एक विशष्टि सामाजिक वर्ग अथवा वर्गों के संदर्भ में विचार और विश्लेषण करते और समाधान प्रस्तुत करते हैं। क्योंकि जैसा ग्रामस्की का भी आग्रह है, ''एक वर्ग–निरपेक्ष पृथक सामाजिक श्रेणी के रूप में बुद्धिजीवियों के बारे में विचार एक मिथ है।'' (वहीं उद्धृत)।

'कार्य व्यापार' की दृष्टि से दो अलग–अलग प्रकार के बुद्धिजीवियों में वह भेद करता है (वहीं उद्धृत) 'पारंपरिक बुद्धिजीवी' और 'जैविक बुद्धिजीवी'। इस अन्तर का चरण सिंह के संदर्भ में महत्व है।

प्रथम –

साहित्यकार, वैज्ञानिक आदि पारंपरिक पेशेवर बुद्धिजीवी जिनकी स्थिति समाज के अंतराल में निश्चित किन्तु सीमित वर्ग प्रभामंडल की है जो (स्थिति) अन्ततः अतीत के एवं मौजूदा वर्ग सम्बंधों द्वारा अनुप्राणित रहती है और विभिन्न ऐतिहासिक वर्गरूपों के प्रति उसका लगाव अव्यक्त रहता है। (ग्रामस्की, 1971 : 3)।

ग्रामस्की स्वयं 'पारंपरिक' बुद्धिजीवियों के उदाहरण देता है– वे जो ग्रामीण अंचल में देखे जाते हैं (देहाती किस्म के बुद्धिजीवी) – पुरोहित, वकील, नोटेरी, डॉक्टर, अध्यापक। उसका कहना है कि वे कस्बों, (विशेषकर छोटे कस्बों) और देहात के लोगों के समग्र सामाजिक जीवन से जुड़े रहते हैं और उनका सम्बंध है ऐसे पेट्टी बुर्जआ वर्ग से जिसे पूंजीवादी व्यवस्था ने जन्म दिया और जिसकी अभी तक सटीक व्याख्या नहीं हुई (ग्रामस्की, 1971 : 14)।

ऐसा था ग्रामीण उत्तर प्रदेश जिसमें चरण सिंह पले, उन्होंने वकालत की और वे राजनीतिज्ञ बने। अन्य बातों के अलावा ऐसे बुद्धिजीवियों का काम है 'कृषक वर्ग को स्थानीय तथा राज्य प्रशासन के सम्पर्क में लाना' (वहीं उद्धृत)। एक नौजवान ग्रामीण वकील के रूप में चरण सिंह ऐसे ही 'पारंपरिक' बुद्धिजीवी थे और उन्होंने उसी तरह का काम भी किया।

दूसरे 'जैवी' बुद्धिजीवी हैं –

एक विशिष्ट आधारभूत सामाजिक वर्ग के चिन्तनशील एवं संगठनशील तत्व। इन जैवी बुद्धिजीवियों को उनके पेशे, जो उनके वर्ग के अनुसार कुछ भी हो सकता है, की अपेक्षा उनके

उस कार्य व्यापार के आधार पर पहचाना जाता है, जिसके तहत वे अपने वर्ग के विचारों और अरमानों को संचालित करते हैं। (ग्रामस्की, 1971 : 3)।

ग्रामस्की और स्पष्ट करता है –

प्रत्येक सामाजिक समूह जो आर्थिक उत्पादन की दनिया में आवश्यक कार्य व्यापार के मूल क्षेत्र में अस्तित्व ग्रहण करता है, उसके साथ मिलकर जैविक रूप से बद्धिजीवियों के एकाधिक वर्ग बनाता है, जो (बुद्धिजीवी) इसे आर्थिक, सामाजिक एवं राजनैतिक क्षेत्रों में एकरूपता तथा इसी कार्य व्यापार के प्रति जागरुकता प्रदान करते हैं। (ग्रामस्की, 1971 : 5)।

वह इस प्रकार एक अति आवश्यक उदाहरण प्रस्तुत करता है – ''पूंजीपति व्यापारी अपने साथ औद्योगिक टैक्नीशियन, राजनैतिक अर्थनीति का विशेषज्ञ, नई संस्कृति तथा नई कानूनी व्यवस्था के आयोजकों आदि का निर्माण करता है।'' (वहीं उद्धृत)।

इस मुद्दे पर ग्रामस्की का लेखन विशाल और ज्ञानवर्धक है। इस पर हम यहां विस्तृत चर्चा नहीं कर सकते। परन्तु हम ग्रामस्की द्वारा कृषक तथा बुद्धिजीवियों पर व्यक्त किये गये विचारों को देखना चाहेंगे।

ग्रामस्की का विचार है कि किसानों को छोड़ प्रत्येक वर्ग जैविक रूप से अपने बुद्धिजीवियों को पैदा करता है (कीमान, 1983 : 231)। वह कहता है –

यह देखा गया है कि कृषक समाज, जो कि उत्पादन की दुनिया में अत्यंत आवश्यक काम करता है, अपने 'जैविक' बुद्धिजीवियों को तैयार नहीं करता और न यह विभिन्न प्रकार के पारंपरिक बुद्धिजीवियों का ही समीकरण करता है, जबकि दूसरे सामाजिक समूह किसानों में से ही अपने बुद्धिजीवी प्राप्त करते हैं और पारंपरिक बुद्धिजीवियों की बहुत बड़ी संख्या किसानों के बीच ही पैदा होती है (ग्रामस्की, 1971 : 6)।

उसके सम्पादक लिखते हैं : ग्रामस्की का आम तर्क होता था.... किसान मूल का वह व्यक्ति जो 'बुद्धिजीवी' बनता है (पुरोहित, वकील आदि) सामान्यतः अपने मूल वर्ग से जैविक रूप से जुड़ा नहीं रहता (ग्रामस्की, 1971 : 6, नोट– 4)।

सामान्यतः मेरा विश्वास है कि यह एक सार्थक दृष्टि है। परन्तु चरण सिंह के प्रति आकर्षण अंशतः इसलिए है कि उन्होंने अपने आपको इस सामान्यीकरण के अनुरूप नहीं डाला। जाट किसान कुल में जन्मे चरण सिंह वकील बने परन्तु जैविक रूप से वे अपने मूल वर्ग से जुड़े न रहे। दूसरी ओर वे अपनी वयस्कावस्था के अधिकांश वर्षों में साररूपेण 'जैविक' बुद्धिजीवी बने रहे और उस वर्ग के विचारों तथा अरमानों का संचालन करते रहे, जिससे वे जैविक रूप से सम्बद्ध थे। निस्संदेह, उन्होंने इस वर्ग को एकरूपता तथा आर्थिक, सामाजिक एवं राजनैतिक क्षेत्रों में उसके कार्य व्यापार के प्रति जागरूकता प्रदान की।

चरण सिंह जिससे सम्बद्ध थे, वह विशाल कृषक समाज नहीं था और न ही वह देहात के लोगों का विशाल सामाजिक समूह था– पूंजीवादी व्यवस्था से अनुस्यूत जो अभी तक अव्याख्यायित है। यह धनी और कुछ हद तक मध्य वित्तीय कृषक वर्ग था जिससे वे जैविक रूप से जुड़े हुए थे, जिसके विचारों तथा अरमानों का उन्होंने संचालन और प्रतिनिधित्व किया– आरंभिक पूंजीवादी वर्ग जिसका अभ्युदय पूंजीवाद की वजह से हुआ और जो सटीक रूप से व्याख्यायित होने की प्रक्रिया से गुजर रहा था।

उक्त वर्ग का राजनैतिक स्तर पर उन्होंने कितनी स्पष्ट सफलता के साथ प्रतिनिधित्व किया यह हम देख चुके हैं।

(ग) नव लोकरंजकतावाद का भारतीय संस्करण

जो लोग भारत के बाहर बड़े वेग के साथ चलने वाले राजनैतिक चिंतन की धाराओं तथा राजनैतिक आचरण से परिचित हैं, वे यह पहचान करेंगे कि चरण सिंह सुदीर्घ लोक–रंजकतावादी एवं नव लोक–रंजकतावादी विचारों की परंपरा में सही उतरते हैं। इस मामले में हमें नव–लोकरंजकतावाद का भारतीय संस्करण प्राप्त होता है।

पिछले पर्चे में (बायर्स, 1979) जिसे मैंने आधुनिक उदाहरण की श्रेणी में रखा और जो नव–लोकरंजकतावाद के पाश्चात्य बुद्धिजीवी द्वारा विशिष्ट व्यक्तिगत रीति से तैयार किया गया था। उसमें मैंने लिप्टन के विचारों की विषयवस्तु का संकेत दिया और लोकरंजकतावाद तथा नव–लोकरंजकतावाद को परिभाषित किया। (दूसरों ने वास्तव में अलग परिभाषाएं दी हैं। अन्य दूसरे उपयोगितापूर्ण तरीके से वर्णित लोकरंजकतावाद से इंकार करेंगे और नहीं मानेंगे कि नव–लोकरंजकतावाद का भी कोई अस्तित्व है, परन्तु यह मेरी साम्प्रतिक चिंता नहीं है।) मैं उन परिभाषाओं को नहीं दोहराऊंगा। किन्तु, जिस बात पर मैं जोर दूंगा वह यह है कि चरण सिंह को लोकरंजकतावादी या नव–लोकरंजकतावादी परम्परा में रखना आकस्मिक एवं निराधार टिप्पणी से कहीं अधिक है। इसी परिप्रेक्ष्य में चरण सिंह के लेखन को देखा जा सकता है, और जो उनकी विचारधारात्मक एवं राजनैतिक महत्व का समुचित स्थान निर्धारण कर सकता है।

लिप्टन के विचारों और नुस्खों को चरण सिंह ने भी पसंद किया और उनके प्रति समान रुचि व्यक्त की। अपनी अंतिम महत्वपूर्ण पुस्तक में उन्होंने लिप्टन की पुस्तक और उसके एक पहले के लेख को उद्धृत किया है (लिप्टन 1988, लिप्टन 1977) विस्तार के साथ अपनी स्थिति के समर्थन में (सिंह, 1981 : 164, 182, 186–8, 192, 224–5, 233, 512–13)। यह एक विडंबना है कि चरण सिंह अपने तर्कों को इससे पूर्व 40 वर्षों से बड़ी कुशलता और आवेग के साथ विस्तार में प्रतिपादित कर रहे थे। वास्तव में चरण सिंह द्वारा 'शहरी पूर्वाग्रह' की धारणा के एक रूप को चिर स्वीकृत कर लिया गया था और मुझे यह देखने का अवसर मिल चुका था। लिप्टन ने चरण सिंह को कहीं भी उद्धृत नहीं किया। वह ऐसा विस्तार से तथा अनुग्रहपूर्वक कर सकता था।

वस्तुतः विचारों के जिस वर्ग से चरण सिंह का लेखन सम्बद्ध है, उसके तहत लोकरंजकतावाद और नव–लोकरंजकतावाद को अत्यंत तीखे ढंग से परिभाषित और शक्तिशाली ढंग से निर्मित किया गया है। जब यह स्वदेशी भूमि में स्वतःस्फूर्त हुआ और जब विशिष्ट प्रत्युत्तर के रूप में उभरा तो यह अत्यंत प्रभावशाली सिद्ध हुआ। चरण सिह के विचार सटीक रूप से इसी श्रेणी में आते हैं। इस या अन्य दृष्टियों से उनकी तुलना उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध और बीसवीं शताब्दी के प्रथम दो दशकों के रूप में पनपे लोकरंजकतावाद और नव–लोकरंजकता से की जानी चाहिए और उस लोकरंकतावाद से की जानी चाहिए जो उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम दशक में अमेरिका में फला–फूला।

संगति, प्रतिपादन तथा प्रभाव की दृष्टि से चरण सिंह की इस परंपरा ने अत्यंत महत्वपूर्ण ढंग से रूसी लोकरंजकतावादियों (नरोदिक लेखक जो लेनिन कृत 'रूस में पूंजीवाद का विकास' में उसके बौद्धिक और वैचारिक विरोधी थे) तथा प्रसिद्ध रूसी नव–लोकरंजकतावादी चयनोव को उसकी विपुल योगदान राशि और विशाल एवं बहुफलदायक

संस्था ऑरगेनाइजेशन एण्ड प्रोडक्शन स्कूल सहित अपने में समाहित किया। वह विशिष्ट रूपभेद बेजोड़ था– चयनोव की प्रतिभा द्वारा गढ़ा हुआ किन्तु सुस्पष्ट रूप से रूस की वस्तुगत परिस्थितियों के उत्तर के रूप में।

उसी तरह उत्तरी अमेरिकी प्रभेद (लोकरंजकतावाद का) स्पष्ट रूप से अमेरिका वस्तुगत परिस्थितियों का परिणाम था– अल्पकालिक रूसी प्रभेद से बहुत कम शक्तिशाली, विद्वतापूर्ण परंपरा को जन्म न देने वाला किन्तु सुसंगत राजनैतिक दृष्टि से महत्वपूर्ण और बारीकी से ध्यान देने योग्य, ग्रामीण अमेरिकी विशेषताओं तथा उस युग के अमेरिकी पूंजीवाद की विशिष्टताओं के बाहर समझ में न आने वाला।

रूसी तथा अमेरिकी प्रभेद लोकरंजकतावाद तथा नव–लोकरंजकतावाद की उच्च परम्परा के अन्तर्गत आते हैं और उन सशक्त परिस्थितियों से जो भी शक्ति उन्होंने ग्रहण की हो, दोनों स्थानीय परिस्थितियों की उपज हैं। इसी तरह चरण सिंह के विचारों को भी समझाा जा सकता है। वे स्पष्ट रूप से उस उच्च परम्परा में आते हैं और उत्तरी–पश्चिमी भारत की भूमि में से विकसित हुए हैं। वस्तुतः उनकी शक्ति और उनके महत्व का स्त्रोत यही है। वे विशिष्ट रूप से देसी हैं, उनकी जड़ें चरण सिंह की मातृभूमि उत्तर प्रदेश में गहरी जमी हुई हैं। वे आग्रहपूर्ण तरीके से विशिष्ट हैं और इसी कारण शक्तिशाली भी। वे चरण सिंह के वर्ग मूलों और वर्ग निष्ठा से बंधे हुए हैं और वास्तविक एवं तीव्र राजनैतिक संघर्ष के दिनों में व्यक्त हुए। चरण सिंह के व्यक्तित्व में विचार और राजनीतिक आचरण परस्पर गुंथे हुए हैं।

वास्तव में जिन प्रभेदों का जिक्र हुआ है उनके संदर्भ में और चरण सिंह के संदर्भ में भी विकासमान पूंजीवाद के आरंभिक चरणों की परिस्थितियां तद्‌युगीन परिस्थितियों से मेल खाती हैं। अपने अन्तर्विरोधों, विघटनकारी परिवर्तन, स्थानीय परिस्थितियों की प्रबलि विविधताओं तथा विभिन्न प्रक्षेप पथों से युक्त होने के कारण पूंजीवाद का सामना किया जा सकता है। अतः लोकरंजकतावाद / नव–लोकरंजकतावाद सशक्त रू‍प से पूंजीवाद विरोधी और शहर विरोधी भी होता है; क्योंकि पूंजीवाद अपनी अवांछित अभिव्यक्तियों के आधार पर अपने स्त्रोज शहर से जुड़ा रहता है। यह बात भी है कि यह (पूंजीवाद) देहात के साथ अपने विगत सम्बंधों के प्रति रागात्मकता व्यक्त करे और ऐसे सुनहरे दिनों तथा कृषिमूलक रमणीय स्थितियों की याद करे, जो कभी नहीं रहे होंगे। नव–लोकरंजकतावाद के संदर्भ में भी यह उन उभरते हुए वर्गों के हितों का ध्यान रखता है जो पूंजीवाद के पर्याप्त रूप से विकसित होने के कारण पूर्णतः पूंजीवादी बन सकते हैं (अर्थात धनी तथा कुछ मध्यम किसान)।

नव–लोकरंजकतावाद अन्य स्थानों व कालों की भांति चरण सिंह के संदर्भ में भी सुस्पष्ट विचारधारा के रूप में पाया गया है, जिसकी जड़ें, जैसे–जैसे देहात में धनी एवं मध्यम वर्ग आकार ग्रहण करते गये, वास्तविक एवं सुदृढ़ वर्ग हितों और वर्ग अरमानों में जमती गईं। ऐसा इन दो वर्गों के पूंजीपति किसान वर्ग में अच्छी तरह परिवर्तित होने से पूर्व ही हो गया। इससे वस्तुपरक रूप से कालगत अन्तर पैदा होता है, जिसके अन्तर्गत समरूप एवं शोषित समझे गये ग्रामीण अंचल (बाह्य प्रभावों द्वारा शोषित) में धनी एवं मध्यम किसान जो भी लाभ मिल सके, हथिया लेते हैं।

नव–लोकरंजकतावाद ऐसी विचारधारा है जिसे अपने ठोस एवं विभिन्न व्यक्त रूपों में देहात में वर्गगत वस्तुपरक किन्तु अधूरे (जिनके पूरा होने की गारंटी नहीं) परिवर्तनों के उत्तर में बनाया गया है, जो उन किसानों (या कृषक समदाय जैसा उन्हें बार–बार कहा जाता

है) के वर्ग का मूलाधार तैयार करते हैं, जो स्पष्ट रूप से सम्पन्न हैं। चरण सिंह के संदर्भ में भी यही बात है।

(घ)चरण सिंह के विचारधारात्मक/विश्लेषणात्मक निबंध के तत्व

चरण सिंह के विचारधारात्मक/विश्लेषणात्मक निबंध के पहलू पहले ही उभर चुके हैं : शहर विरोध का संस्करण, सर्वव्याप्त ग्रामीण निर्धनता का बार–बार जिक्र, एक समरूप कृषक समाज का नजरिया, जिस पर निर्धनता कायम रखने वाली शक्तियां समान रूप से छाई रहती हैं और जिसके अन्तर्गत लाभ समान रूप से वितरित होते हैं, यह स्पष्ट रूप से नव–लोकरंजकतावादी स्थिति की विशेषताएं हैं। अब हम इस निबंध पर सिलसिलेवार चर्चा करेंगे।

1.जमींदार विरोधी भावना – बड़े और शक्तिशाली जमींदार वर्ग के प्रति चरण सिंह की नफरत गहरी थी और इस वर्ग की कड़ी आलोचना करने में वे सदा अटल रूप से डटे रहे; ''कृषि उत्पादन जमींदार वर्ग पर निर्भर नहीं है। ये न जमीन पर कोई काम करते हैं और न काश्तकारों के काम आते हैं'' (सिंह, 1979 बी : 15)। ''लगान का भुगतान पूर्णतः अनावश्यक है। यह भुगतान उस वर्ग को किया जाता है जो दूसरों के श्रम पर जीवत रहते हैं, जो व्यर्थ समय गंवाते हैं और जो किसी प्रकार का काम–धंधा नहीं करते'' (वहीं उद्धृत)। ''जमींदारी श्रमिकों को अत्यंत गरीब बनाती है और उनकी अधोगति करती है'' (वहीं उद्धृत)। ''इसने जन–जीवन और फसलों दोनों के विकास को रोक दिया है और वह आर्थिक असमानता एवं राजनैतिक प्रतिक्रियावाद की समर्थक है'' (सिंह, 1947 बी : iii)। ''यह निश्चित रूप से नुकसानदायक और खुराफाती है'' (सिह, 1947 बी : 6)। उन्होंने जमींदारी के खिलाफ प्रबल एवं भावपूर्ण तर्क प्रस्तुत किये हैं (देखें, सिंह, 1947 बी अध्याय, खासकर 14–19)। ऐसी स्थिति में काश्तकारी को सुधारने की बात की जा सकती है कि सरकार काश्तकारी की रक्षा करे, अवांछित काश्तकारी के रूपों यथा बटाईदारी को समाप्त करे और 'उचित' लगान की दरें निश्चित करे। पर चरण सिंह इस प्रकार की बात नहीं करेंगे– जमींदारी प्रथा को समाप्त होना ही होगा।

चरण सिंह ने सदैव गांधी जी को अपना पथप्रदर्शक माना (उनकी पुस्तक 'भारत की अर्थनीति : गांधीवादी रूपरेखा– 1978)। गांधी जी के चिंतन की एक विशेषता ने उन्हें परेशान किया होगा। वह था गांधी जी का 'ट्रस्टीशिप' जिसके तहत यह विचार था कि जमींदारी उन्मूलन की आवश्यकता नहीं है; क्योंकि जमींदारों को उनके काश्तकारों का ट्रस्टी माना जा सकता है और उनसे अच्छे व्यवहार का आग्रह किया जा सकता है। उन्होंने गांधी जी के साथ जून 1942 में हुए लुई फिशर के साक्षात्कार को उद्धृत किया और निष्कर्ष निकाला ''उनके (गांधी जी) सिद्धांत के अनुसार ट्रस्टी लोगों ने गलत व्यवहार किया है, अतः उन्हें हटा देना चाहिए'' (सिंह, 1947 बी : 164; फिशर को उद्धृत करते हुए (1943 : 54)।

जमींदारी उन्मूलन जरूरी था। पर जमीन जोतने की आदर्श पद्धति क्या होनी चाहिए? दूसरे शब्दों में, (जिससे चरण सिंह सुपरिचित थे) कृषि के प्रश्न को व्यापक रूप से हल करना चाहिए– या तो समाजवादी रास्ते से अर्थात सामूहिक खेती द्वारा या पूंजीवाद द्वारा अर्थात अच्छी तरह पूंजीवादी कृषि पद्धति अपनाकर। वे दोनों संभावनाओं के प्रति अच्छी तरह जागरुक थे और दोनों के प्रति उनकी समझ कृषि विशेषज्ञों से भी अधिक स्पष्ट थी।

संभावनाओं के व्यापक परिप्रेक्ष्य में उन्होंने एक असामान्य बुद्धिजीवी की तरह चिंतन किया। उन्होंने समाजवादी प्रथा को तो जोरदार तरीके से अस्वीकार कर दिया। पूंजीवादी पद्धति के प्रति उन्होंने सहानुभूतिपूर्ण रुख अपनाया पर देहात के अन्दर इसके पूर्ण विकास को उन्होंने रोका। उनके प्रस्तावों से एक तीसरा रास्ता निकला– वह रास्ता जो निश्चित रूप से समाजवादी नहीं था परन्तु जो पूंजीवादी भी नहीं था (सिंह, 1978 : 117)। उनका समाधान आदर्श रूप से लोकरंजकवादी था– सुदृढ़ कृषक वर्ग पर आधारित। इसकी आधारभूत पूर्वशर्त किसान का भू–स्वामित्व था।

2. भू–स्वामित्व – 1947 में छपी अपनी महत्वपूर्ण पुस्तक 'एबोलिशन ऑफ जमींदारी–टू आल्टरनेटिव्स' (सिंह, 1947 बी) (जमींदारी उन्मूलन दो विकल्प) में शुरू में ही अपनी स्थिति स्पष्ट करते हुए उन्होंने काश्तकारी प्रथा पर जोरदार नुस्खा दिया, जिस पर सौ साल पहले फ्रेंच दार्शनिक प्रूधों ने यह तर्क दिया कि भू–स्वामित्व उसी का है जो भूमि को जोतता है (सिंह, 1947 बी : 22)। यह बात उनके दिमाग में जमी रही। [उदाहरण के लिए देखें सिंह (1959 : V-VI, 1–3) : सिंह (1964 : 3-6 सिंह : 11–12, 16, 25, 119) सिंह (1981 : 122–3)।

इस मामले पर विस्तृत दलीलें दी गई (सिंह, 1947 बी : अ, V, 1227–61)। यहां उसकी चर्चा नहीं हो सकती परन्तु दो तर्क– राजनैतिक और आर्थिक– जिनमें विकेन्द्रीकरण के गुणों की भूरि–भूरि प्रशंसा की गई, प्रमुख थे। 'जिस प्रकार राजनीति के क्षेत्र में विकेन्द्रीकरण हमारा लक्ष्य है उसी प्रकार आर्थिक गतिविधियों के क्षेत्र में विकेन्द्रीकरण उचित आदर्श है।' (सिंह, 1947 बी : IV)। इस विकेन्द्रीकरण और इससे संलग्न लाभों को किसान के भू–स्वामित्व के आधार पर ही अर्जित किया जा सकता है।

पहले चरण सिंह ने तर्क दिया, ''किसान भू–स्वामित्व से प्रजातांत्रिक देहाती समाज का विकास होता है'' (सिंह, 1947 बी : 135)। वे इस बात के प्रति सतर्क थे कि सम्पत्ति सम्बंधी अधिकारों का दुरुपयोग नहीं होना चाहिए। 'यदि भू–स्वामी संपत्ति से जुड़े सामाजिक एवं आर्थिक कर्तव्यों का पालन नहीं करता तो उसे सट्टेबाज और दोषी समझा जाए, उसे (भूमि से) वंचित किया जाए' (सिंह, 1947 बी : 127)। चरण सिंह द्वारा प्रजातंत्र पर बल देने वाली बात आश्वस्त नहीं करती। किन्तु 1947 में उन्होंने इस बात को सहमतिपूर्ण ढंग से नोट किया था कि 'इस प्रकार के सिद्धांतों को कृषि तथा कृषक समाज के सम्बंध में पार्टी की स्थिति को स्पष्ट करते हुए जर्मन नाजी पार्टी ने म्यूनिख से 6 मार्च 1930 के दिन जारी किये गये अपने सरकारी घोषणा–पत्र में अंगीकृत किया था।' (वहीं उद्‌धृत)।

दूसरा तर्क भू–स्वामित्व में निहित शक्तिशाली प्रेरक तत्वों से सम्बद्ध था। चरण सिंह आर्थर यंग को उद्‌धृत तो नहीं करते परन्तु उनकी बात में उसके इस प्रसिद्ध सूत्र की अनुगूंज सुनाई पड़ती है– सम्पत्ति का जादू रेत को सेना बना देता है।[23] चरण सिंह के शब्दों में, ''किसान भू–स्वामी काश्तकार या श्रमिक से अधिक परिश्रम से और अधिक समय तक काम करता है, उसका पुरस्कार आर्थिक लाभ से अधिक मानसिक संतोष में निहित है'' (सिंह, 1947 बी : 132)। देहात के उन गरीब किसानों, जिनके पास बहुत कम जमीन है और जो खेतिहर मजदूर हैं, उन पर चुप्पी साधी गई है। उन्हें सम्पत्ति की जादुई शक्ति नहीं सौंपी जा सकती।

किसान भू–स्वामित्व के समर्थन में वे भारत के अतीत का उदाहरण देते हैं– एक अन्य लोक–रंजकतावादी विशेषता। उन्होंने कहा, ''अतीत स्मृति की पंचायत हमें राजनैतिक तथा

प्रशासनिक पथ पर ले जाती है'' (सिंह, 1947 बी : IV)। ऐसे काल्पनिक विगत का आह्वान किया गया है जब प्राचीन हिन्दू भूमि व्यवस्था के गुण सर्वोपरि थे– ऐसा अतीत जब भारत छोटे जोतदारों और किसान भू–स्वामियों का देश था (1947 बी : 9)। कौटिल्य के अर्थशास्त्र से उद्धरण लिये गये बराबरी वालों से बने भारतीय ग्राम्य समाज के उदाहरणों को संकेतित किया गया। यह उदाहरण भी दिया गया कि जन–कल्याणकारी राज्य द्वारा हस्तक्षेप तभी किया जाता था जब भू–स्वामी जमीन को ठीक तरह से नहीं जोत पाता और उसे दूसरे को दिया जाता (इस सिद्धांत को जर्मन नेशनल सोशलिस्ट पार्टी ने अपने कृषि कार्यक्रम में शामिल किया) (सिंह, 1947 बी : 5–9)। स्वतंत्र किसान उत्पादकों की बिरादरी में मतभेदों के उभरने की संभावना पर कोई बात नहीं की गई। शायद उदार राज्य ही इसे दुरुस्त करने के लिए हस्तक्षेप करता होगा और शायद आधुनिक राज्य भी ऐसा ही करेगा। राज्य की (यह) अन्तर्निहित थ्योरी यदि एकांगी नहीं है तो और कुछ भी नहीं है।

3. सामूहिक एवं सहकारी खेती के विरोध में

कृषि प्रश्न के समाजवादी हल सामूहिक खेती के खिलाफ उन्होंने विस्तृत आवेगपूर्ण तर्क प्रस्तुत किये और इसे किसान–भू–स्वामित्व के लिए घातक बताया। सामूहिक खेती उनके लिए एक अभिशाप थी।

अपनी पहली पुस्तक में, जिसकी भूमिका में अक्टूबर 1946 की तिथि अंकित है, उन्होंने समाजवाद को सोवियत रूस के एकमात्र उदाहरण के विस्तृत परीक्षण के आधार पर अस्वीकृत किया है (सिंह, 1947 बी : अ. II, III, IV, 23–126)। उन्होंने अपने बाद के लेखन में सोवियत रूस का अक्सर जिक्र किया है और 1949 के बाद के चीन ने भी उन्हें आकृष्ट किया। परन्तु अपनी पहली पुस्तक में ही उन्होंने बड़ी सावधानी और विस्तार से सामूहिक खेती के खिलाफ लिखा। यहां मैं उनकी पूरी दलील को प्रस्तुत नहीं कर सकता; परन्तु उसकी कुछ विशेषताएं नोट करने योग्य हैं।

उन्होंने अपने अध्ययन को अंशतः सामूहिक खेती से पूर्व और उसके दौरान के रूसी कृषि इतिहास के सुबोध एवं अकाट्य वर्णन के आधार पर प्रस्तुत किया है (सिंह, 1947 बी : अ. II, 23–50), जिसमें अन्य बातों के अलावा स्टोलपिन के 1906 के भूमि–सुधार कानून की प्रशंसा की गई है, जिसके तहत किसान को भू–स्वामित्व प्रदान करने की कोशिश की गई थी। चरण सिंह कहते हैं कि यह स्टोलपिन की बहुत बड़ी उपलब्धि थी कि क्रांति के पूर्व 1906 के भूमि सुधारों के दस वर्ष बाद सम्पन्न एवं स्वतंत्र किसानों का एक वर्ग तैयार हो गया था (पृष्ठ 272)। रूस को इसी रास्ते पर चलना था और भारत को भी यही रास्ता अपनाना चाहिए।

वे धनी किसानों के प्रति सहानुभूतिपूर्ण रवैया अपनाते हैं। सामूहिक खेती के बारे में उनका कहना है, ''जिन्हें कुछ ही समय पूर्व बड़े काम के नागरिक और रूसी कृषि की बुनियाद डालने वाला कहा गया था आश्चर्यजनक एवं निराशापूर्ण तरीके से उन्हें कुलक की श्रेणी में रखा गया'' (पृष्ठ 43.4)। 'कुलक' शब्द से वे नफरत करते थे। बाद में जब यह शब्द उनके और उनके घटकों के लिए प्रयुक्त होता था तो वे आग बबूला होने लगते थे (1979 : 31)।

समाजवाद और पूंजीवाद से अलग जिस प्रकार के संभाव्य रास्तों की मजबूत पकड़ चरण सिंह ने हासिल कर ली थी, वह स्पष्ट है। देहात और कस्बे के सम्बंधों की और व्यापार के अन्तर अनुभागीय सम्बंधों के प्रति भी उनकी समझ स्पष्ट थी (उदाहरण के लिए देखें पृष्ठ 41–2)। रूसी ग्राम्य समाज मं निहित मतभेदों तथा रूसी कृषक समाज के धनी, मध्यम और

निर्धन वर्गों में विभेदन की उन्हें अच्छी जानकारी थी। अपने इस और बाद की पुस्तकों में इस बात की भारत के संदर्भ में वे उपेक्षा कर सकते थे परन्तु रूस के संदर्भ में उन्हें यह बात भलीभांति ज्ञात थी।

सामूहिक खेती को अस्वीकारने के अनेक हेतु हैं। सबसे पहले उन्होंने इस बात पर जोर दिया कि सामूहिक खेती की व्यवस्था में मजदूरों के अधिकार नहीं होते। निजी पूंजी के अन्तर्गत पंजीपति, कारखाने के मालिक या जमींदार के लिए काम करने वाले श्रमिक की अपेक्षा सामूहिक खेती में राज्य द्वारा नियुक्त श्रमिक के कम अधिकार होते हैं। (पृष्ठ 80)। सामूहिक खेती किसानों को सर्वाधिक वांछित स्वतंत्रताओं से वंचित करती है। यथा– आचरण अथवा व्यवहार की आजादी, अपने ढंग से रहने की आजादी और व्यक्तिगत रूप से कोई कदम उठाने की आजादी– ये अब तक सर्व् व्यवहृत कृषि की विशिष्ट एवं गौरवपूर्ण विशेषताएं हैं (पृष्ठ 88)। दूसरे, मशीनीकरण, जो सामूहिक खेती की आवश्यक परिणाम है, एकदम से अवांछित है क्योंकि, इससे व्यक्ति मशीन का पिछलग्गू बनकर रह जाता है (पृष्ठ 87)। तीसरी और अत्यंत महत्वपूर्ण बात यह है कि सोवियत यूनियन में सामूहिक खेती के आधार पर सिंचाई योग्य भूमि में औसत उत्पादन की वृद्धि नहीं हुई (पृष्ठ 99–103)। इसके अनेक कारण हैं, पर सबसे प्रमुख यह सामान्य–सा तथ्य है कि बिना भोतिक रूप से प्रोत्साहन प्राप्त किये लोग काम नहीं करते (पृष्ठ 107–8)। इस तथ्य को रूस में इस रूप में देखा गया कि शक्ति और स्त्रोत बहुत बड़ी मात्रा में निजी कृषि की ओर मुड़ गये (पृष्ठ 108–110)।

ये तर्क सुपरिचित हैं; परन्तु जिस सम्यक् एवं अकाट्य तरीके से चरण सिंह ने उन्हें प्रस्तुत किया है वह असाधारण है। भारतीय साहित्य में कहीं भी सामूहिक खेती के खिलाफ इससे अच्छा नहीं लिखा गया। सामूहिक खेती पर किया गया पहले का आक्रमण बाद में सहकारी खेती पर भी लागू किया गया (सिंह, 1959, सिंह 1964)। छटे दशक के बाद के वर्षों में सहकारी खेती के प्रवेश को उन्होंने खेतों में सहयोगिता के आधार पर किये गये कृषिकर्म के रूप में देखा, न कि खतरनाक सहकारी विभाग के रूप मे। उन्होंने सहयोगिता वाले रूप का समर्थन किया और सहकारी कृषि का वैसा ही दृढ़ विरोध किया जैसा सामूहिक खेती का। वास्तव में सहकारी खेती को इतना खराब माना गया कि उसे सामूहिक खेती का पर्याय और अधिक से अधिक उसका पूर्वरूप समझा गया।

यहां जमींदारों की तरह के घृणास्पद एक नये बिचौथ्लये वर्ग का निर्माण करेगा और 'अधिकारपूर्ण नियंत्रण के लिए आधार तैयार करेगा' (सिंह 1964 : VII)। किसान भूस्वामित्व को यह कमजोर बना देगा और नष्ट कर देगा तथा किसान को मात्र कृषि कार्य में सहायक व्यक्ति बनाकर रख देगा (सिंह 1964 : VI)। कृषि योग्य भूमि में वृद्धि करने से प्रति एकड़ उत्पादन निश्चित रूप से कम होगा और आकारगत यह हानि– सर्व् व्याप्त मशीनीकरण तथा उसकी अनुवर्ती बुराइयों, यथा व्यापक बेरोजगारी और भारत जिसे वहन नहीं कर सकता आयातित मशीनरी का ऐसा भारी खर्चा– से मिलकर कई गुना बढ़ जायेगी (सिंह 1964 : VI-VIII)। सहकारिता के विरोध में जो मामला तैयार किया गया, उसने नई चिंता पैदा की और मशीनीकरण के खिलाफ एक नया तर्क शामिल किया।

सामान्यतः यह महसूस नहीं किया गया कि बैल की जगह ट्रैक्टर के आने से गोबर की खाद कम पड़ेगी और रासायनिक खाद का अधिक से अधिक इस्तेमाल करना होगा। अकार्बनिक खाद से भूमि की उर्वरता कम हो जायेगी, हालांकि तात्कालिक परिणाम

आश्चर्यजनक होंगे। दूसरी ओर कार्बनिक (ऑरगेनिक) खाद भूमि की उर्वरता को कायम रखती है और उसे अनाज का अक्षयस्त्रोत बनाती है (सिंह 1964 : VIII)।

इस पर उन्होंने किंचित विस्तार से चर्चा की –

सहकारी कृषि के खिलाफ जो मामला उन्होंने तैयार किया उसके विभिन्न तंतुओं के समर्थन में उन्होंने बहुत बड़े परिमाण में साक्ष्य एकत्र किया। वे बड़े मनोयोग से आंकड़े प्रस्तुत करते थे। वास्तव में कुछ तर्क जिन्हें उन्होंने सामूहिक एवं सहकारी खेती के खिलाफ प्रस्तुत किये वे व्यापक पैमाने पर की गई पूँजीवादी कृषि के विरोध में भी पड़ते हैं। तब कृषि क्षेत्र में पूंजीवाद के विकास के प्रति उनका किस प्रकार का रवैया है?

4. पूंजीवाद के प्रति उनकी मनोवृत्ति

चरण सिंह ने एक सच्ची लोकरंजकतावादी शैली में कम आवेगपूर्ण किन्तु दृढ़ पूंजीवाद विरोधी रुख अपनाया जिसे 1947 में स्पष्ट रूप से व्यक्त किया गया था, जिसे किंचित परिवर्तित रूप में छठे, सातवें (सिंह, 1959, सिंह 1964), आठवें (सिंह, 1978) और नवें (सिंह 1981) दशक में दोहराया गया था। आरंभिक बयान विशिष्ट रूप से रुचिकर है। अनेक प्रश्न उठाये गये।

सर्वप्रथम किसान भू–स्वामित्व और पूंजीवाद के सम्बंधों की बात थी और यहां चरण सिंह ने मार्क्सवाद के साथ संवाद किया। उन्होंने दो तर्कों का सामना किया और उन्हें अस्वीकृत कर दिया। एक तरफ यह जर्जर–सी आपत्ति थी कि यह व्यवस्था पूर्वसाम्यवादी समाज को ध्यान में रखती है जिससे पूंजीवाद का जन्म होता है और इसकी स्थापना एवं पुनर्स्थापना का अर्थ होगा प्रगतिचक्र का उल्टा घूमना (सिंह, 1947 बी :140)। इस बात को वे नहीं मानते। उनका तर्क है कि भूमि की सीमित निजी पूंजी उत्पादन के मार्ग में अवरोधक होने की अपेक्षा अधिक उत्पादन के लिए प्रोत्साहक है (सिंह, 1947 बी : 141)। प्रोत्साहनों के परिप्रेक्ष्य में हमें उनके तर्क की इस सम्बंध में कुछ झलक मिली। बाद में प्राप्त साक्ष्य के आधार पर इसे उछाला गया, जब उन्होंने विभिन्न लेखनों के जरिये बार–बार छोटी जोतों की उच्च उत्पादकता का पक्ष लिया। नीचे संक्षेप में इसका वर्णन कर रहा हूँ।

दूसरी ओर उन्होंने इस तर्क का विरोध किया कि किसान द्वारा की गई खेती में पूंजीवादी प्रवृत्ति सुस्पष्ट रूप से होती है, जो अपरिहार्य रूप से पूंजीवाद को उत्पन्न करेगी और बड़े फार्मों के रूप में विकसित होगी (सिंह 1947 बी : 151–2)। उन्होंने इस बात पर दृढ़तापूर्ण तरीके से बल दिया कि यदि समुचित ढंग से नियंत्रण और संतुलन की विधि अपनाई जाए तो किसान भू–स्वामित्व का ऐसा विकास कदापि न होगा। किसान भू–स्वामी एक आदर्श गैर–पूंजीवादी व्यक्ति है।

किसान को पूंजीवादी कहना तथ्यों के साथ खिलवाड़ करना है क्योंकि किसान पूंजीवादी की तरह कभी भी धन संचय नहीं करता। कृषक भू–स्वामी न तो पूंजीवादी है और न मजदूर। हालांकि वह कभी–कभी दूसरों को अपने काम पर लगा सकता है परन्तु वह स्वयं मालिक भी है और नौकर भी। वह दूसरों का शोषण नही करता और न दूसरों द्वारा शोषित होता; क्योंकि वह अपने और अपने बच्चों के लिए ही श्रम करता है। कारखोने के मजदूर की तरह वह खेत में किये गये अपने कठोर श्रम के बदले पारिश्रमिक की उम्मीद नहीं करता। वह केवल आर्थिक लक्ष्यों द्वारा प्रेरित नहीं रहता (सिंह, 1947 बी : 152)। उनका आग्रह था कि भारतवर्ष के लिए किसान भू–स्वामित्व आदर्श अर्थव्यवस्था है। 1947 में यह 'दूसरा कदम था

परन्तु कोई वजह नही है कि यह अंतिम कदम नहीं हो सकता (सिंह, 1947 बी : 154)। वास्तव में पूंजीवाद किसान भू–स्वामित्व तथा कृषक समाज के अनवरत अस्तित्व के लिए एक खतरा है, परन्तु कृषि क्षेत्र में पूंजीवाद एक अपरिहार्य स्थिति नहीं है।

किसान भू–स्वामित्व के अन्तर्गत उन सभी अवांछित परिणामों से बचा जा सकता है, जिन्हें पूंजीवाद ने पैदा किया है। इनमें शामिल है– सर्वत्र व्याप्त दिहाड़ी मजदूरी (जिसके कारण आजादी नष्ट हो जाती है; परन्तु सामूहिक खेती की स्थिति की अपेक्षा कम) तथा कृषि का अत्यधिक अवांछित मशीनीकरण। मशीनीकरण के बारे में जो तर्क चरण सिंह ने प्रस्तुत किया है वह समाजवादी और पूंजीवादी दोनों अर्थव्यवस्थाओं में परिव्याप्त है (सिंह, 1947 बी : 115–26); परन्तु उसे स्पष्टतः पूंजीवादी कृषि व्यवस्था में ही लागू होते देखा गया है। यह लोगों को भूमि से वंचित कर देगा और भयकर बेरोजगारी पैदा कर देगा। उन्होंने कृषि के मशीनीकरण के खिलाफ मामला तैयार किया और जिसका बार–बार उल्लेख उन्होंने अपनी बाद की पुस्तकों में किया, यथा ट्रैक्टरों का इस्तेमाल अन–आर्थिक है और ऐसा करने से प्रति एकड़ उत्पादन में वृद्धि नहीं होती (सिंह, 1964 : 79–88, 108–14; सिह 1978 : 104–5 ; सिंह 1981 : 119–20, 134–5)। पूंजीवादी कृषि व्यवस्था के संदर्भ में उनके तर्क का सदा इस्तेमाल नहीं किया गया; परन्तु यह अव्यक्त स्थिति उपयुक्त अवसरों पर स्पष्ट हुई (उदाहरणार्थ, सिंह 1964 : VII; सिंह 1981 : 135)।

परन्तु जिस चीज को चरण सिंह ने कभी नहीं माना, वह यह थी कि जिस प्रकार भू–स्वामित्व की उन्होंने इतनी दृढ़ता से वकालत की और इस कार्य के लिए जैसा कारगर राजनैतिक कर्म उन्होंने किया उससे निचले स्तरों से उठता हुआ या किसानों के बीच में से पैदा होने वाला पूंजीवाद विकसित हो सकता है। उनकी मातृभूमि पश्चिमी उत्तर प्रदेश, पंजाब तथा हरियाणा में ठीक ऐसा हुआ भी। उनके घटकों में से वे धनी किसान जिनके अभ्युदय तथा एकजुटता को सम्भव बनाने में उन्होंने बहुत बड़ी मदद की थी, स्पष्ट रूप से पूंजीवाद की ओर बढ़ रहे हैं। वे संचय करते हैं, दूसरों के श्रम का शोषण करते हैं, और वे स्पष्ट रूप से लाभार्जन के विचारों से अनुप्रेरित हैं और उन्होंने कृषि का मशीनीकरण भी कर लिया है। सातवें दशक के आरंभिक वर्षों तथा उसके उपरांत उन्होंने अपनी राजनैतिक गतिविधियों के दौरान, इस संदर्भ में जो प्रबल अंतर्विरोध पैदा हुए थे उनका सामना किया। अपने चारों ओर ट्रैक्टरों तथा पूंजीवादी परिवर्तन की बाहरी साज–सज्जा को देखते हुए अपने जीवन के अंतिम दशक में उन्हें इस बात का पर्याप्त आभास अवश्य हो गया होगा। परन्तु उनके बौद्धिक व्यवहार अर्थात् उनकी विचारधारा में इस बात का शायद ही कोई संकेत है।

5. चरण सिंह तथा विलोम सम्बंध

हम चरण सिंह के उस साक्ष्य पर संक्षेप मं बात कर सकते हैं जिसने उनके निबंध में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। यही वह साक्ष्य है जिसने बड़ी जोतों की अपेक्षा छोटी जोतों की (प्रति एकड़ अधिक उत्पादन) उच्च उत्पादकता का उद्घाटन किया– प्रसिद्ध विलोम (इन्वर्स) सम्बंध– जब इसकी जानकारी भारतवर्ष में उपलब्ध हुई तो इसने 1962 के बाद भारतीय अर्थशास्त्रियों में सुदीर्घ एवं अनवरत बहस के मुद्दे का रूप अख्तियार किया। वे अपने लेखन के अन्दर इस साक्ष्य का हवाला देते हैं और इससे जोरदार निष्कर्ष निकालते हैं। अकादमिक अर्थशास्त्रियों में इस महान बहस की शुरूआत 1962 में अमर्त्यसेन ने की जब उन्होंने अपने

एक लेख के माध्यम से विलोम सम्बंध की व्याख्या की (सेन 1962)। बाद में सेन ने लिखा कि उन्होंने मधुमक्खी के छत्ते को छेड़ने का अवांछनीय कार्य किया (सेन 1975 : 148)। परन्तु बिना अकादमिक मधुमक्खियों को छेड़े चरण सिंह तो ऐसा 1947 से करते आ रहे थे। उन्होंने यही किया कि अत्यंत स्पष्ट राजनीतिक उद्देश्यों के लिए विलोम सम्बंध (इन्वर्स रिलेशनशिप) का इस्तेमाल किया। उन्होंने अत्यंत स्पष्ट तरीके से इसकी वैचारिक महत्ता को भांपा और बार–बार इसकी चर्चा कीं भारत के लिए किसी साक्ष्य की उपलब्धि से पूर्व ही चरण सिंह ने विलोम–सम्बंध की संभावना की ओर ध्यान आकर्षित किया और भारतवर्ष के लिए सबसे पहले आंकड़े एकत्र करने का अवसर प्राप्त किया। भारतीय बहस में उन्हें कोई श्रेय नहीं मिला।

1947 में चरण सिंह ने डेविड मित्राने की पुस्तक का हवाला दिया, जिसमें मित्राने स्विट्जरलैंड की कृषि में विलोम–सम्बंध के आंकड़े दर्शाता है (सिंह 1947 बी : 95.6)। मित्राने का हवाला देते हुए (1930 : 254)। आंकड़े अर्न्स्ट लार ने एकत्र किये; चयनोव ने इसी लार को उद्धृत किया जब उसने विलोम–सम्बंध की ओर ध्यान आकर्षित किया था (चयनोव 1966 : 236)। चरण सिंह ने भी डेनमार्क के लिए प्रस्तुत आंकड़े उद्धृत किये और तीसरे दशक में लेखन में प्रवृत्त एक जर्मन प्रोफेसर के लेखन को आधार बनाया (सिंह 1947 बी : 96)। चरण सिंह ने यह अर्थ लगाया कि कृषि क्षेत्र में अन्यत्र जो कुछ भी है, भारतीय कृषि के क्षेत्र में भी वैसा ही होना चाहिए।

1959 तथा पुनः 1964 में उन्होंने सहकारी कृषि के खिलाफ अपने तर्क में विलोम–सम्बंध के आंकड़े विस्तार से दिये हैं (सिह 1959 : अ.VI 21–27) और (सिंह 1964 : अ.VI 35–105)। (1959 में प्रकाशित पुस्तक का द्वितीय संस्करण)। उन्होंने इंग्लैंड, डेनमार्क, नार्वे, स्वीडन, स्विट्जरलैंड और अमेरिका के आंकड़े भी प्रस्तुत किये। 1964 में उन्होंने भारतीय आंकड़ों का हवाला दिया जिनमें स्पष्ट एवं विधिवत तरीके से विलोम–सम्बंध दर्शाया गया था –

मद्रास, पंजाब, पश्चिम बंगाल, बम्बई, अपने प्रांत उत्तर प्रदेश के सम्बंध में फार्म मैनेजमेंट के आंकड़े (सिंह 1964 : 48–50) (ये तब उपलब्ध नहीं थे जब 1959 वाली पुस्तक लिखी ई थी।) वास्तव में यही आंकड़े थे जिन्होंने विलोम–सम्बंध पर बहस को जन्म दिया, जो चरण सिंह से एकदम अलग चल रही थी। वे 'विलोम–सम्बंध' की ओर आठवें दशक में पुनः लौटे (सिह 1978 : 14–16) तथा नवें दशक में भी (सिंह 1981 : 115–19, 147)।

काफी आकर्षक मुद्दे उठाये गये जिन पर स्थानाभाव के कारण यहां चर्चा नहीं हो सकती। चरण सिंह ने जिस विलोम–सम्बंध का इस्तेमाल किया उसके पहलू विचारणीय हैं; अंशतः इसलिए कि उन्होंने इस मामले का परिष्कृत विवेचन किया है और अंशतः इसलिए कि ये पहलू उनकी वैचारिक बहस में निहित अन्तर्विरोधों को मुखरित करते हैं जिसे वे रोक नही सके। सामूहिक, सहकारी एवं पूंजीवादी कृषि के खिलाफ उन्होंने विलोम–सम्बंध का दक्षतापूर्वक इस्तेमाल किया। उन्होंने स्वयं सार–रूपेण लिखा, ''उसी प्रकार की स्त्रोतगत सुविधाएं, जमीन और जलवायु हो तो एक छोटा खेत प्रति एकड़ के हिसाब से एक बड़े खेत, चाहे वह सामूहिक, सहकारी अथवा पूंजीवादी आधार पर प्रबंधित क्यों न हो, से अधिक उपज देता है'' (सिंह 1981 : 115)।

इसके तहत उन्होंने एक साफ–सुथरी बहस में विलोम–सम्बंध के कारणों पर विचार किया (सिंह 1959 : 23–7; सिंह 1964 : 38–43)। वास्तव में, यह ऐसी बहस थी जिसके

आधार पर अकादमिक बहस के अन्तर्गत व्याख्याओं का पूर्वानुमान था और जिसने ऐसी व्याख्या प्रस्तुत की जो सेन की तरह की न थी– हालांकि उसमें सेन की तरह का लालित्य और क्लिष्टता भी न थी। 1947 में अपनी पुस्तक में उन्होंने इस प्रश्न का सामना किया कि क्या यह ऐतिहासिक रूप से एक ऐसा विशिष्ट तथ्य है जो पूंजीवाद या समाजवाद के विकसित होने पर साफ हो सकता है। [उदाहरण के लिए देखिये, सिंह (1947 बी : 96–7)] उनका उत्तर नकारात्मक है। इस बात पर वे बिल्कुल गलत सिद्ध हो सकते हैं। मेरा ऐसा ही विश्वास है। परन्तु वे इस प्रश्न को सुलझाते समय राजनैतिक अर्थनीति में सन्निहित आवश्यक मुद्दों के प्रति जागरुक थे। विलोम–सम्बंध पर अकादमिक बहस में ऐसा बहुत कम देखा गया है। इतना ही नहीं, इस पर जिस तुलनात्मक ढांचे को उन्होंने बराबर बरकरार रखा उसके तहत भारतीय विलोम–सम्बंध के परिणामगत प्रश्न प्रस्तावित किये गये। इस बात का ध्यान अकादमिक बहस ने नहीं रखा। अनेक दृष्टियों से यह एक असाधारण कार्य था।

विलोम–सम्बंध पर विचार करने पर कुछ गंभीर राजनैतिक समस्याएं उठीं। चरण सिंह ने लगातार क्रांतिकारी भूमि–पुनर्वितरण–सुधार का विरोध किया। परन्तु क्या 'विलोम–सम्बंध' में इस प्रकार के पुनर्वितरण का सशक्त साक्ष्य निहित नहीं था? सिद्धांततः था। चरण सिंह द्विविधाग्रस्त थे। उनके द्वारा प्रयुक्त तर्क का इस तरीके से इस्तेमाल किया जा सकता था जिससे उनके मूल घटकों– धनी एवं मध्यम किसानों के हितों को नुकसान पहुँचता। इससे आंशिक रूप से बचने का रास्ता था। विलोम का तर्क कहां तक जोत के आकार के धरातल पर काम आ सकता था– चाहे वह जैसा भी हो? इसे एक एकड़ या उससे कम धरातल पर काम में लाया जा सकता है तो क्या इस प्रकार की इकाइयों के संदर्भ में पुनर्वितरण की बात नहीं सोची जा सकती? उन्होंने कहा कि वास्तव में ढाई एकड़ जोत से नीचे यदि अतिरिक्त मानव श्रम के आधार पर अतिरिक्त उत्पादन नहीं होता तो 'धरती माता पर मनुष्य की खुशामद का कोई असर नहीं पड़ता' [(सिंह 1981 : 119) और देखिये सिंह (1964 : 46) जहां इन्हीं शब्दों की पुनरावृत्ति हुई है।]

परन्तु चरण सिंह ने जिस ''विलोम–सम्बंध'' का प्रतिनिधित्व किया उसके निहितार्थों को अपनी वर्ग–निष्ठा के साथ कभी भी नहीं टकराने दिया। ढाई एकड़ की निम्नतम सीमा प्रस्तावित की गई थी न कि जैसा प्रत्याशित था भूमि की आदर्श सीमा। प्रति वयस्क किसान के लिए उन्होंने साढ़े सत्ताईस एकड़ की आदर्श जोत सीमा प्रस्तावित की थी और निम्नतम (आधारभूत) ढाई एकड़ की (सिंह, 1978 : 20; सिंह, 1981 : 147)। विलोम–सम्बंध के तर्क को जल्दबाजी में लागू करने से धनी एवं मध्यम किसानों पर प्रतिकूल असर नहीं पड़ने वाला था।

6. संक्षेप में अन्य तत्व :

चरण सिंह के निबंध के अन्य अनेक तत्व हैं। यदि उन पर विस्तार के साथ चर्चा की जाए तो उनकी विशेषताओं के आधार पर एक नव–लोकरंजकतावादी दृष्टि लक्षित होती है। कुछ विशेषताएं दृष्टिगोचर हैं ही नहीं। हम दोनों तरह के उदाहरणाों को लेंगे।

वे कृषि की प्रमखता को इस अर्थ में मानते थे कि वह सम्पत्ति का मूलाधार है और उसमें किसी प्रकार का हस्तक्षेप वांछनीय नहीं है। उनके लेखन में यह दृष्टिकोण रहस्यात्मक ढंग से बार–बार आता है। उनका आग्रह था कि सभी कलाओं और उद्योगों के मूल में कृषि है, क्योंकि कृषि ही भूमि से कच्चे पदार्थ पैदा करने की कला है, जिसके बिना जीवन और सभ्यता

दोनों असंभव हैं। किसी देश की खुशहाली प्रकृति के इसी मुफ्त उपहार के उपयोग पर निर्भर है कि वह किस प्रकार भूमि को काम में लाता है (सिंह, 1947 बी : 3—4)।

लोकरंजकतावादी की अपेक्षा जहां तक वे नव—लोकरंकतावादी थे उन्होंने औद्योगिक विकास के किसी रूप को नकारा नहीं। परन्तु उद्योग को कृषि के साथ सुदृढ़तापूर्वक सम्बद्ध होना चाहिए (सिंह 1947 बी : III)। ऐसा उद्योग जिसमें पूंजी कम लगे और श्रमिकों की खपत हो। भारत जैसे देश के लिए भारी उद्योग आर्थिक रूप से अपव्ययपरक है (सिंह, 1981 : 398)। 'बल्कि उस प्रकार की अर्थव्यवस्था की आवश्यकता है जिसके अन्तर्गत हाथ से चलने वाले उद्योग, हस्तशिल्प तथा कुटीर उद्योगों की प्रधानता हो' (सिंह, 1978 : 92)। भारी उद्योग या व्यापक स्तर पर मशीनी उद्योग उपयुक्त समय आने पर चलाये जा सकते हैं। परन्तु इस अवस्था के आने या औचित्य स्थापित होने में बहुत लम्बा समय लगेगा (सिंह, 1978 : 93)। यह अवस्था कृषि क्षेत्र में क्रांति होने पर ही आयेगी जो पर्याप्त अतिरिक्त अनाज और कच्चे पदार्थों का एक आवश्यक आधार तथा तैयार माल के लिए व्र्यापक मांग का माहौल तैयार करेगी (सिंह, 1978 : 92—3)। इसके लिए साधनों को कृषि से बाहर निकालने की अपेक्षा कृषि की ओर ले जाना होगा।

जैसा हमने देखा, वे व्यापक स्तर पर कृषि के मशीनीरकरण के खिलाफ थे और ऐसी खेती चाहते थे जो मानव तथा पशु—शक्ति पर आधारित हो। परन्तु हर प्रकार के मशीनीकरण के खिलाफ भी वे न थे। जापान की तरह की छोटी मशीनों का उन्होंने समर्थन किया जो मनुष्य का स्थान होने के बजाए मानव श्रम के पूरक के रूप में काम आयेंगी (सिंह, 1978 : 116)। उन्होंने ऐसे नये कृषि निवेशों का जोरदार पक्ष लिया जो प्रधानतः जैवी—रासायनिक (बायो—केमिकल) हों। इनमें से कृत्रिम उर्वरक अपवाद थे जिनके प्रति उनका विरोध हम देख चुके हैं (उदाहरणार्थ, देखिये सिंह 1964 : 434)।

ग्रामीण रमणीयता के साथ मेल खाने वाली शहर विरोधी भावनाओं को प्रचुर मात्रा में उद्‌बुद्ध किया गया। तिरस्कृत शहरी बुराइयों से बचना चाहिए। वे कहते हैं, 'शहरी जीवन का एक आकर्षण है परन्तु कालान्तर में यह जन घातक भी है' (सिंह 1947 बी : 88)। उनके सम्पूर्ण लेखन में शहर विरोधी धारणा है। जो मामला उन्होंने सामूहिक खेती के खिलाफ तैयार किया, वह अंशतः इस प्रकार था, ''इसका अर्थ यह हुआ कि खेती में काम करने वाले की आजादी तदनुसार कम हो जायेगी और वह शहर के कारखाना मजदूर के अधीन हो जायेगा।'' (सिंह 1947 बी : IV)।

इस तर्क को पूंजीवादी औद्योगीकरण और पूंजीवादी कृषि पर लागू किया जा सकता था। समकालीन भारत में शहरी पूर्वाग्रह की ऐसी परिपक्वता है कि वह कृषि की बर्बादी कर रहा है (देखिये सिंह, 1981 : अध्याय 6—8, 161—236)। तत्कालीन शहरी पूर्वाग्रह पर उनका अंतिम विस्तृत बयान ऐसे अध्यायों के शीर्षक है 'कृषि में लागत का अभाव' (कैपिटल स्टार्वेशन ऑफ एग्रीकल्चर) 'किसान का शोषण' (एक्सप्लाइटेशन ऑफ दि फार्मर) तथा 'गांव की निर्धनता' (डिप्राइवेशन ऑफ दि विलेज)।

भारतीय समाज की सबसे गहरी विभाजन रेखा जाति पर भी चर्चा हुई [उदाहरणार्थ देखिये, सिंह (1964 : 329—34, 350—52); सिंह (1981 : 535—48)] इस पर जो सही दृष्टि उन्होंने अपनाई वह है, 'यह संस्था (जाति) अब समय के अनुकूल नहीं है' (सिंह, 1964 : 329)

और इसे समाप्त कर देना चाहिए। परन्तु उनके प्रकाशित लेखन में जाति पर चर्चा सुव्यक्त रूप से शायद ही हुई है।

सम्भवतः किसानों में मौजूद जाति भेद की स्थिति की उन्होंने अपने समूचे लेखन में निरंतर उपेक्षा की है। इससे भी अधिक गहरी विभाजक–रेखा वर्ग की तो और भी जोरदार उपेक्षा की गई है। इस पर तथा बहुत–सी अन्य बातों पर भी चरण सिंह की दृष्टि चयनोव से मिलती–जुलती है। चयनोव सुप्रसिद्ध विद्याव्यसनी था और धनी एवं मध्यम किसानों का सिद्धांतकार। समकालीन युग में ऐसे विद्याव्यसनियों की कमी नहीं थी। परन्तु सबके पास चयनोव की जैसी प्रतिभा नहीं थी। चरण सिंह वास्तव में एक विलक्षण एवं परिपक्व राजनीतिज्ञ थे, धनी एवं मध्यम किसानों के ''जैवी'' बुद्धिजीवी। समकालीन विद्याव्यसनियों ने, ऐसा लगता है, उनके साथ भद्रतापूर्ण व्यवहार करना ठीक समझा।

7. भारत :–

भारतीय अर्थशास्त्री जी. पार्थ सारथी ने 1978 में व्यंग्यपूर्ण तरीके से 'हमारे राजनेता लेखक चरण सिंह का उल्लेख किया है (पार्थ सारथी, 1978 : 137)। यदि राजनेता का अर्थ है ऐसा व्यक्ति जो सरकार के कार्यों में दक्ष हो, जो बुद्धिपूर्ण एवं असंकीर्ण तरीके से सरकार को समझता हो; उसी प्रकार यदि एक अकादमिक विशेषज्ञ के रूप में विद्वान का यह अर्थ हो कि वह सीमित समस्याओं को आलोचनात्मक एवं निष्ठापूर्ण तरीके से समझता है, तो पार्थ सारथी ने ठीक ही संकेत किया है कि चरण सिंह न तो राजनेता थे और न विद्वान। चरण सिंह उसके अलावा कुछ और थे और उस रूप से कम महत्वपूर्ण नहीं थे। वे राजनीतिज्ञ–बुद्धिजीवी थे और जैसा मैंने तर्क दिया, वे असाधारण रूप से प्रभावशाली राजनीतिज्ञ और अत्यंत असामान्य बुद्धिजीवी थे।

मैंने सुझाया है कि चरण सिंह एक आदर्श नव–लोकरंजकतावादी नेता थे। जैसा मैंने संकेत दिया है, वे परिस्थितियां जिनमें नव–लोकरंजकतावाद फल–फूल सकता है, पूंजीवाद के आरम्भिक चरणों की है जब वह अपने समूचे परिवेश को प्रभावित कर लेता है (यदि उसे ऐसा करना है तो) और जब देहात में पूंजीवादी सम्बंध निर्बाध रूप से प्रबल हो जाते हैं (यदि उन्हें ऐसा होना है तो)। ऐसी परिस्थतियों का मार्क्स ने कैपिटल के जर्मन संस्करण में मुखरित रूप से वर्णन किया है। मार्क्स ठीक उसी प्रकार की परिस्थितियों को हासिल करता है जिनका हम यहां पर सामना कर रहे हैं (हालांकि वास्तव में उसका किसी तरह भी लोकरंजकतावाद या नव–लोकरंजकतावाद से सरोकार नहीं है)। जर्मनी के सम्बंध में उसका कहना है '

हम शेष पश्चिम यूरोपीय महाद्वीप की तरह न केवल पूंजीवादी उत्पादन के विकास के कारण, अपितु उसके अधूरे विकास के कारण भी कष्ट भोग रहे हैं। आधुनिक बुराइयों के साथ विरासत में प्राप्त बुराइयों की एक पूरी सूची हमें परेशान कर रही है, जो अनेक अपरिहार्य सामाजिक एवं राजनैतिक कालदोषों के साथ उत्पादन के अति प्राचीन तौर–तरीकों की निष्क्रिय विद्यमानता से पैदा हुई है। हम न केवल उसके कारण कष्ट भोग रहे हैं जो जीवित हैं बल्कि उसके कारण भी जो मृत हैं (मार्क्स, 1961 : 9)।

यह ठीक वैसी ही जमीन है जिस पर लोकरंजकतावाद/नव–लोकरंजकतावाद पनपते हैं और उसे विरोधात्मक चरित्र प्रदान करते हैं।

अधूरा पूंजीवादी विकास ही अर्थवान है– पूंजीवाद द्वारा उत्पन्न बुराइयों के साथ विरासत में प्राप्त बुराइयों का मेल जिसे पूंजीवाद अभी तक दूर नही कर सका। जिस प्रकार

के नव–लोकरंजकतावाद पर हम विचार कर रहे हैं, इस प्रकार की स्थिति का एक सटीक उत्तर है और जब तक यह 'संक्रमण' अथवा अधूरे पूंजीवादी विकास की स्थिति रहेगी तब तक यह अपनी शक्ति बरकरार रखेगा। यदि हम नव–लोकरंजकतावाद की मूलभूत प्रकृति के सम्प्रेषण के लिए एक शक्तिशाली रूपक चाहते हैं, तो यह वही है जिसे मार्क्स ने दिया था– लि मौर्ट सैसित लिविफ (हम न केवल उसके कारण कष्ट भोग रहे हैं जो जीवित हैं अपितु उसके कारण भी, जो मृत हैं)।

चरण सिंह की विशेष रुचि इस बात में है कि पूंजीवाद का विरोध किया जाए और उस पर आक्रमण किया जाए तथा नव–लोकरंजकतावाद के किसी सदृढ़ रूप को अपनाया जाए। वह विशिष्ट विचारधारा उस वर्ग की है जो अभी तक पूंजीवादी तो नहीं बना परन्तु पूंजीवादी बनने की प्रक्रिया से गुजर रहा है। यह विचारधारा एक ओर चरण सिंह से सम्बद्ध यथार्थताओं पर पर्दा डालती है और दूसरी ओर (उक्त) अधूरे परिवर्तन (पूंजीवाद) में निहत अन्तर्विरोधों को व्यक्त करती है।

(**नोट** : यह लेख **जर्नल ऑफ पीजेन्ट स्टडीज** के सौजन्य से दिया जा रहा है)

टिप्पणियां :

1. इस निबंध के अन्तर्गत धनी, मध्यम और गरीब किसानों (के विभाजन) का उल्लेख हुआ है। मैं समझता हूँ, इस प्रकार का विभाजन चरण सिंह के राजनैतिक–अर्थनीति सम्बंधी विचारों की पर्याप्त समझ के लिए आवश्यक है। ठोस ऐतिहासिक स्थितियों में किसानों के इस वर्ग–विभाजन की सतर्कतापूर्वक पहचान
होनी चाहिए। उनकी सही–सही विशेषताएं समय, स्थान और परिस्थिति तथा देहात में पूंजीवादी प्रवेश की मात्रा के अनुसार अलग–अलग होंगी। चरण सिंह के जन्म के समय 1902 में इन वर्गों की जो विशेषताएं तथा पारस्परिक सम्बंध थे, चालीस साल बाद 1947 में जब चरण सिंह ने कृषिमूलक तत्वों का प्रतिनिधित्व करने के लिए अपना राजनैतिक जीवन प्रारम्भ किया ये महत्वपूर्ण रूप से भिन्न थे। पुनः चालीस साल बाद 1987 में जब उनकी मृत्यु हुई तो ठोस गुणात्मक परिवर्तन के कारण यह वर्गगत भेद और अधिक बढ़ गया।

    उक्त बातों को दृष्टि में रखते हुए निम्नलिखित का जोखिम सावधानीपूर्वक उठाया जा सकता है **(क)** धनी किसान मालिक और काश्तकार दोनों एक साथ हो सकते हैं जिनकी भूमि खंडों में विभक्त हो और जो मध्यम या गरीब किसानों की तुलना में प्रति एकड़ उपज कम प्राप्त करते हों। परन्तु जहां वे काश्तकार हैं गरीब किसानों की अपेक्षा वे अधिक लाभदायक काश्तकारी की शर्तें हासिल कर सकेंगे। कुछ हद तक वे पूंजी के पारंपरिक रूपों का संचय करेंगे। विशुद्ध बाजारू बचत के विक्रयार्थ उनकी स्थिति बाजार के अनुकूल होगी। श्रम संतुलन के लिए वे दिहाड़ी पर मजदूर रखेंगे। वे सूदखोर (महाजन) की पूंजी तथा व्यापारी पूंजी के चक्कर में आ सकते हैं परन्तु गरीब किसानों की भांति कभी नहीं। **(ब)** मध्यम किसान भी भूमिस्वामी और काश्तकार दोनों एक साथ हो सकते हैं और उनके जोत खंड टुकड़ों में विभक्त हो सकते हैं। धनी किसानों की अपेक्षा उनकी स्थिति बाजार के अनुकूल कम हो सकती है और गरीब किसानों की अपेक्षा बाजार के योग्य उनका उत्पादन कम हो सकता है। क्योंकि वे ऐसी मजबूरियों के अधीन नहीं हैं जो आपद्धर्म के कारण. बचत (डिस्ट्रेस सरप्लस) कराते हैं]। उनकी जोत छोटी हो सकती हैं और अत्यधिक व्यस्त अवसरों पर वे बहुत कम मजदूर लगायेंगे, क्योंकि श्रम निवेश के लिए घर के लोगों से ही मुख्यतः काम चल जाता है। परन्तु विशेषकर ऐसी परिस्थितियों में जब मौसम प्रतिकूल रहता है और कीमतें गिर जाती हैं तो वे महाजनों और व्यापारियों के जाल से मुक्त नहीं रह सकते। **(ग)** धनी एवं मध्यम किसानों की अपेक्षा गरीब किसान का कश्तकार बनना अधिक सम्भव है, वह भी अब्बल दर्जे का, जिसकी बटाईदार होने की अधिक संभावना है। अधिक श्रम लगाने के कारण उनके

छोटी–छोटी जोत प्रति एकड़ अन्य दो वर्गों की अपेक्षा अधिक उपज देंगी, बाजार के लिए वे आपद्धर्म बचत (डिस्ट्रेस सरप्लस) करेंगे और जिंदा रहने के लिए दूसरों को उन्हें अपना श्रम बेचना होगा। (श्रम संतुलन में काम आने वाले मजदूर) वे विशेष रूप से महाजनों और व्यापारियों के चक्कर में आने वाले हैं। इस सब पर देखिये बायर्स (1974 : 232–37), बायर्स (1981 :420–24)। इस निबंध के दौरान इन बातों पर बहुत कुछ कहा गया है। यदि वर्गीकरण से प्राप्त भेद ठीक से हों तो जोतों के आकार का उपयोग सही रहेगा। अतः नीचे जैसा मैंने सुझाया है छठे दशक के आरम्भ और मध्य में पश्चिमी उत्तर प्रदेश में मोटे तौर पर जिनके पास पांच एकड़ तक की जात थीं वे अधिकतर गरीब किसान थे और जिनके पास 5 से 15 एकड़ तक जमीन थी, वे अधिकांशतः, सम्भवतः मध्यम जबकि 15 एकड़ से ऊपर वाले धनी किसान थे।

एक और भी पेचीदा बात पैदा होती है। धनी किसानों को पूंजीवादी किसानों से अलग करना होगा। ऐसा करने के लिए बहुत बड़ी सावधानी की आवश्यकता है। पूंजीवादी किसानों की पहचान केनिम्न आधार हैं। धनी किसान उत्पादक शक्तियों के ऐसे तत्वों का इस्तेमाल करने के लिए उद्यत हो सकते हैं जो कृषक समाज के अन्य हिस्सों से गुणात्मक रूप से भिन्न नहीं है। परन्तु इस लिहाज से पूंजीवादी किसान दूसरा ही रुख अपनायेगा। दिहाड़ी मजदूरी के साथ उसका सीधा सम्बंध होगा और उस श्रम से अतिरिक्त फायदा उठाकर और बड़े पैमाने पर इसे वह उत्पादकतापूर्ण तरीके से पुनः कृषि में लगायेगा। पूंजी की गहनता से कृषि कार्यों का मशीनीकरण होगा, विशेषकर ट्रैक्टरीकरण। पंजीवादी किसान मार्केट के योग्य अतिरिक्त बचत को अपनी मर्जी से संचित और नियंत्रित कर सकेगा। उत्तरी पश्चिमी भारत में पूंजीवादी रूपान्तरण की कुछ संश्लिष्टताओं पर पढ़ें, बायर्स (1972), बायर्स (1981)।

2. इस पैराग्राफ (अनुच्छेद) की सूचना सिंह से ली गई है (1986 : 1–2), (सिंह,1981 : लेखक पर टिप्पणिया) भारत में कौन क्या है (विशिष्ट भारतीयों का परिचय) 1971 : 270), ब्रास (1965 : 137)।
3. इस अनुच्छेद की सूचना सिंह से ली गई है (1986 : 1) बोस (1987)।
4. इस अनुच्छेद की सूचना सिंह ली गई (1981 : लेखक पर टिप्पणियां), सिंह (1986 : 1:5)।
5. इस अनुच्छेद की सूचना सिंह से ली गई (1981 : लेखक पर टिप्पणियां), सिंह (1986 : 1–5), ब्रास (1965 : 139–43)।
6. इस अनुच्छेद की सूचना सिंह से ली गई (1981 : लेखक पर टिप्पणियां), ब्रास (1965 : 141) डंकन (1979 : 1–2, 8) भारत में कौन क्या है 1971 (1971 : 270)।
7. इस अनुच्छेद की सूचना ब्रास से ली गई (1968 : 117), ब्रास (1984 : 120), डंकन (1979 : 2)।
8. इस अनुच्छेद की सूचना सिंह से ली गई (1981 : लेखक पर टिप्पणिया), डांकन (1979 : 1–2, ब्रास (1984 : 120)।
9. इस अनुच्छेद की सूचना सिंह से ली गई (1981 : लेखक पर टिप्पणियां), बायर्स (1981 : 446), भांबरी (1980 : 9)।
10. इस अनुच्छेद की सूचना बायर्स से ली गई (1981 : 447), पींग (1979ए)।
11. इस अनुच्छेद की सूचना सिंह से ली गई (1981 : लेखक पर टिप्पणियां), बोस (1987)।
12. इस अनुच्छेद की सूचना बोस से ली गई (1987)।
13. जहां तक मैं जानता हूँ भारत में भूमि विखंडन की शुरूआत, विकास और प्रादेशिक भिन्नताओं (भिन्न– भिन्न रूपों) के बारे में ठीक तरह से छान–बीन नहीं की गई है। विरासतगत स्थिति के सम्बंध में एक घिसी–पिटी व्याख्या दी जाती है। निजी कानून और रीति–रिवाज के सम्बंध में भी ऐसा ही किया जाता है। (गवर्नमेंट ऑफ इंडिया, 1976 : 185)।

    नेशनल कमीशन ऑन एग्रीकल्चर के प्रतिवेदन के अनुसार –हिन्दुओं और मुसलमानों में प्रचलित मुख्यतः विरासत कानून के कारण जोतों के उप–विभाजन होते हैं परन्तु संयुक्त हिन्दू परिवार के तहत अचल सम्पत्ति के रूप में इस पर सभी उत्तराधिकारियों को संयुक्त अधिकार होता है। उत्तराधिकारियों में निजी सम्पत्ति का बंटवारा इस प्रकार नहीं होता कि किसी को कहीं से अलग कर जमीन दी जाए, अपितु अनुपातिक रूप से अच्छी और खराब जमीन को मिलाकर किया जाता

है। परिणामस्वरूप एक ही पूर्वज की उत्तराधिकारी पीढ़ियां बिरासत में छोटे हिस्से प्राप्त करती हैं, बल्कि उनके भी और छोटे टुकड़े उन्हें मिलते हैं। विखंडन उस तरीके को संकेतित करता है जिसके अनुसार एक व्यक्ति या अविभाजित परिवार की जमीन अलग–अलग खेतों के रूप में दूसरों की जमीन से अलग गांव के अन्दर बिखरी रहती है। (गवर्नमेंट ऑफ इंडिया 1976 : 193)

इस सम्बंध में दृढ़ता नहीं अपितु एक प्रकार का निश्चित सत्याभास है। 'एक बार जब विखंडन या विभाजन की शुरूआत हो गई तो यह प्रत्येक उत्तराधकारी पीढ़ी के साथ बढ़ती जाती है।' (ऊपर उद्धृत : 184) परन्तु इस मुद्दे पर अब तक की गई खोजबीन से कही अधिक बारीक और सतर्क खोजबीन की आवश्यकता है।

इस प्रकार की व्याख्या अपने आप में अपर्याप्त है। जैसा कि राष्ट्रीय आयोग का प्रतिवेदन बताता है, ''अत्याधिक विखंडन सामाजिक ढांचे के प्रभाव का परिणाम है जिसके अनुसार सीमित भूमि की अत्यधिक मांग वह जनसंख्या करती है जो मुख्यतः इस पर निर्भर है'' (ऊपर उद्धृत : 184)। एक दूसरी आवश्यक परिकल्पना हमारे सामने है, भूमि पर जनसंख्या का दबाव। जनसंख्यागत विभिन्न दबावों के आधार पर अनुमानतः भूमि विखंडन के परिणाम और सीमा के अनुसार विभिन्न क्षेत्रीय भिन्नताएं होंगी।

दूसरी परिकल्पना को और अधिक सटीक रूप से प्रस्तुत करना चाहिए। उदाहरण के लिए यह या गया है कि 'ऐसे क्षेत्रों में जहां सिंचाई की बेहतर सुविधाएं हैं, जनसंख्या के दबाव के कारण खेतों का और अधिक मात्रा में विभाजन और उपविभाजन हो सकता है (भारद्वाज, 1974 : 42)।
कृषक समाज के अन्तर्गत आम प्रभावों और भूमि–स्वामित्व के तहत इस प्रकार की व्याख्याएं

उत्पादन सम्बंधों की उपेक्षा करती है। परन्तु अपार संख्यक काश्तकार किसानों की क्या स्थिति है? स्पष्ट है कि यदि जो काश्तकारी करते हैं और जमीन के मालिक भी हैं, कृषि योग्य भूमि (ऐसी स्थिति में) विभाजित हो जायेगी। यही नहीं, यह भी सुझाया गया है कि जब एक बड़ा जमींदार यदि अपनी सिंचाई वाली जमीन को माना किसी बटाईदार को दे देता है, तो वह खेती से अत्याधिक प्राप्ति के लिए बहुत छोटे काश्तकारों को बहुत छोटे–छोटे खेत देना अधिक पसंद करेगा (अपनी पूरी जमीन से कुल उत्पादन के शेयर के रूप में) (भारद्वाज, 1974 : 42)। यह इसलिए होता है कि छोटे काश्तकार के खिलाफ उसकी सौदा पटाने की क्षमता बड़ी मजबूत होती है। यही नहीं, काश्तकार को, जो छोटा खेत उसे मिलता है उस पर अपनी गुजर–बसर चलाने के लिए गहन खेती का सहारा लेना पड़ेगा।

इस पर पर्याप्त खोज की आवश्यकता है। यू0पी0 के सन्दर्भ में संक्षिप्त एवं अपूर्ण बहस के लिए देखें नेल (1962 : 261–2)।

14. नेल ने यू0पी0 पर अपना ध्यान केन्द्रित किया। वह उन प्रयत्नों को दोहराता है जिन्हें भूमि विखंडन से लाभ प्राप्त करने के लिए नियोजित किया गया था। वह कहता है, ''इस पक्रिया से लाभ होते हैं चाहे थोड़े क्यों न हों'' (नेल, 1962 : 154)। वह उन थोड़े से कल्पित लाभों का पता लगाता है हालांकि वह भूमि विखंडन की जोरदार खिलाफत करता है।
वह उल्लेख करता है –

रॉयल कमीशन ऑन इंडियन एग्रीकल्चर (1926) के समक्ष जो गवाह गये वे बीच–बीच में भूमि विखंडन की बुराइयों को कम करने के पक्ष में थे। उनका कहना था कि अलग–अलग खेतों में भिन्न प्रकार की फसलें उगाकर सुरक्षा का आभास होता है (वहीं उद्धृत)।

यू0 पी0 बैंकिंग इन्क्वायरी कमेटी (जिसकी रिपोर्ट 1930 में प्रकाशित हुई) के तर्क का इस्तेमाल करते हुए वह इस स्थिति को अस्वीकार करता है। वह कहता है, ''जिसने संकेत किया था कि एक ही अच्छी फसल से कृषक का भरण–पोषण हो जाना चाहिए और ऐसे मामले का हवाला दिया, जिसके तहत चकबंदी वाली सारी भूमि में धान उगाया गया, जबकि सम्बद्ध काश्तकार असाधारण रूप से सम्पन्न थे'' (वहीं उद्धृत)

दूसरा तर्क जिसे बैंकिंग इन्क्वायरी कमेटी ने अस्वीकार किया नेल के अनुसार यह था कि 'भूमि विखंडन ओले गिरने की आकस्मिक घटना के समय सुरक्षा प्रदान करता था।' कमेटी ने सोचा कि 'बीमारी से 'परहेज' और भी खराब था (वहीं उद्धृत)।

परन्तु बैंकिंग इन्क्वायरी कमेटी ने सोचा, इस तर्क में बहुत बल है कि चकबंदी से अलग–अलग आवास, पीने के पानी के कुएं और खलिहानों की आवश्यकता पड़ेगी और उससे चोरी–डकैती के खतरे भी बढ़ेंगे। इसे भी नेल ने इस आधार पर बिल्कुल सही तरीके से अस्वीकार किया कि ''यह कहना थोड़ा मुश्किल है कि जब गांव और गांव के खेतों को मिलाकर कुल औसत क्षेत्र चौथाई मील होता है तो गांव के टुकड़े करने के अभिभूत करने वाले कारण नहीं हो सकते' (वहीं उद्धृत)।

विभिन्न ऋतुओं में पकने वाली उत्पाद्य फसलों के परिप्रेक्ष्य में अन्य लेखकों ने भी भिन्न काल व स्थानों पर भूमि विखंडन का विवेकपूर्ण औचित्य स्थापित करने का प्रयास किया है, जिसके तहत श्रम की बचत हो सकती है, ऊंची–नीची जमीन में फसलें उगाने की क्षमता पैदा की जा सकती है (जहां ऐसी जमीन है) और क्षेत्र विशेष से जुड़े बाढ़ जैसे खतरों को भी टाला जा सकता है, आदि–आदि (मस्कट 1966 : 148–9) (थाइलैंड पर), जहां सिंचाई प्रमुख साधन है, नये संश्लिष्ट जलमार्गों पर बेतहाशा खर्च आता है, इस तर्क को वहां चकबंदी के खिलाफ प्रयुक्त किया गया है। परन्तु इनमें से कोई भी आश्वस्त करने वाला नहीं है, खासकर तब जब पूंजीवादी या आदि पूंजीवादी कृषि की आवश्यकताएं सामने आती हैं।

हर चीज में तर्कसंगति देखना सम्भव है। भूमि विखंडन में निहित प्रबल हानियों को अगली टिप्पणी में चर्चित किया गया है।

15. संयुक्त राष्ट्र संघ के प्रसिद्ध प्रतिवेदन 'भमि सुधार, आर्थिक विकास के अवरोधक कृषि–ढांचे के दोष' (लैंड रिफॉर्म्स इन एग्रेरियन स्ट्रक्चर ऐज ऑबस्टैकल्स टु इकोनॉमिक डॅवलपमेंट) ने जब '

भूमि–विखंडन की बुराइयों पर लिखा (यूनाइटेड नेशन्स 1951 : 11) तो इस विषय पर विचारों की एक समूची परम्परा का सार प्रस्तुत किया। इसकी अनुगूंज इंडियन फार्म मैनेजमेंट रिपोर्ट्स में सुनी जा सकती है। उदाहरण के लिए, यू0पी0 पर प्रस्तुत रिपोर्ट में (गवर्नमेंट ऑफ इंडिया 1963 : 26) तथा नेल जैसे लेखकों के लेखन में (नेल 1962 : 154)। दोनों मामलों में एक ही सूक्ति का प्रयोग किया गया है। विखंडन से सम्बद्ध अक्षमताओं पर संक्षिप्त किन्तु उपयोगी कथनों के लिए देखें, गवर्नमेंट ऑफ इंडिया (1976 : 195) भारतवर्ष के लिए; नेल (1962 : 152, 154, 262) यू0पी0 के सन्दर्भ में– पार्सन्स, पेन एण्ड रौप (संस्करण 1963 : 206) और अधिक सामान्य अध्ययन के लिए।

यूनाइटेड नेशन की रिपोर्ट में आगे कहा गया है (वहीं उद्धृत) कि भूमि विखंडन से समय और प्रयास की बर्बादी होती है तथा तर्कसंगत काश्तकारी असंभव होती है। कृषि पर राष्ट्रीय आयोग अनेक कारणों से भूमि के समुचित तथा पूर्ण उपयोग को असंभव बनाता है। एक प्लाट से दूसरे प्लाट में मजदूर, पशु, बीज, खाद और सिंचाई के लिए पानी ले जाने में बेकार का खर्च और समय की बर्बादी होती है। इसी तरह कटी फसल को एक ही खलिहान पर लाने में कृषि कार्य के देखरेख से सम्बद्ध कठिनाइयां; सिंचाई पर बढ़ा हुआ खर्च; खेती, नालियां आदि तटबंधों के कारण भूमिक्षय पर भी खर्च और समय की बर्बादी होती है (गवर्नमेंट ऑफ इंडिया, 1976 : 195)। इसके अतिरिक्त फाल के वक्त अलग–अलग खेतों में पहुंचना मुश्किल होता है और अतिक्रमण के कारण तनाव और झगड़े बढ़ते हैं। (वहीं उद्धृत)। नेल (वहीं उद्धृत) कुछ इसी तरह की बातों पर लिखता है।

इस प्रकार की हानियां उन सभी वर्गों के किसानों पर लागू होती हैं, जो विभाजित भूमि जोतते हैं। जो धनी किसान आदि पूंजीवादी हों उनके लिए भूमि विखंडन संचय के मार्ग में प्रबल अवरोधक हो सकता है। उत्पादक शक्तियों का विकास प्रबल रूप से अवरुद्ध हो जाता है; यह विकास चाहे जैवी–रासायनिक हो या मशीनी रूप में (यानि एक ओर, उदाहरणार्थ, नये बीज,

अकार्बनिक उर्वरकों का उपयोग, अमशीनीकृत सिंचाई के नये रूप; दूसरी ओर ट्रैक्टर, ट्यूबवेल इत्यादि)। भूमि विखंडन मशीनी–करण के लिए बहुत बड़ी मुश्किल पैदा करता है।

16. भूमि विखंडन से होने वाली हानियों पर चरण सिंह के स्वयं के चित्रण के लिए देखें सिंह (1986 100–101); संक्षेप में, वे उन सभी मुद्‌दों को लेते हैं जिनका परिचय नोट ननम्बर 15 में है।

17. उत्तर प्रदेश में चकबंदी से सम्बद्ध साहित्य में निहित निम्नांकित ज्ञानवर्धक है (अग्रवाल, 1971, एल्डर, 1962; श्रीरमन 1966; त्रिवेदी, 1973; वाजपेयी, 1964; लैंडजिंस्की, 1965 : 17, अनुभाग II)। 1962; श्रीरमन 1966; त्रिवेदी, 1973; वाजपेयी, 1964; लैंडजिंस्की, 1965 : 17, अनुभाग II)।

18. नकद उत्पादन के प्रतिशत का नकद आयात 1953–54 में 1.3 था जो अगले वर्ष 0.8 तक गिर गया। 1959–60 तक यह प्रतिवर्ष बढ़ता रहा। 1960–61 में गिर गया और उसके बाद जब तक 1965–66 में यह नाजुक स्तर तक पहुंचा, बढ़ता रहा। (व्यास और बंदोपाध्याय, 1975 : ए 3 टेबल I)।

19. 1951 से 1966 तक के 16 वर्षों में स्थिति अनिर्णीत। भारत में कुल अनाज उत्पादन का 2.4 प्रतिशत सरकार ने खरीदा जो विक्रय योग्य (मार्केट सरप्लस) अनाज का महज 8 प्रतिशत था। दूसरी तथा तीसरी पंचवर्षीय योजनाओं की अवधि में (1956–61 और 1961–66) सरकार ने कुल अन्न उत्पादन का क्रमशः 1.1 तथा 1.8 प्रतिशत खरीदा या मार्केट सरप्लस अनाज का क्रमशः 3.5 और 6 प्रतिशत। 1965 और 1966 में आंकड़े थे क्रमशःकुल उत्पादन का 4.6 प्रतिशत या मार्केट सरप्लस का 15.2 प्रतिशत। ये आंकड़े कृष्णा के हैं। (1967, 1697, 1705, 1706) ये सूचित करते हैं कि अनाज बचत के समाजीकरण जैसी कोई चीज हासिल नहीं की गई।

20. इस अनुच्छेद के कुछ विवरणों के लिए देखें डंकन (1978 : 4–5)

21. इस अनुच्छेद के कुछ विवरणों के लिए देंखें डंकन (1979 : 6–7)।

22. जैसा देखा गया है कीमत में प्रत्येक मोड़ यदि कृषि उत्पादन के पक्ष में हो तो उससे व्यापारियों तथा बचत करने वाले किसानों की संचय शक्ति बढ़ती है, जिसके आधार पर वे अगले मौसम में और अधिक बढ़ी हुई कीमतें लगाते हैं। यह तथ्य कि करों, खासकर प्रत्यक्ष करों, का बोझ आपेक्षिक रूप से सम्पन्न किसानों के लिए नहीं के बराबर है– इस बात से उनकी जमाखोरी की क्षमता मजबूत होती रहती है, कृषक समाज के इस वर्ग को उदार आर्थिक सहायता देने की नीति के कारण प्रत्येक वर्ष कृषि उपज की बाजारू कीमतें अतिरिक्त दृढ़ता से बढ़ती रहती हैं, यहां तक कि बहुत अच्छी फसल होने पर भी कीमतें घटने की अपेक्षा बढ़ती हैं (मित्रा 1977 : 110–11)।

23. आर्थर यंग के 'ट्रेवल्स इन फ्रांस' प्रथम भाग में से जॉन स्टुअर्ट मिल द्वारा 'ऑफ पेजेन्ट प्रोपराइटर्स' शीर्षक अध्याय में समर्थन पूर्वक हवाला देते हुए (मिल 1891 : 169) उसी स्वर में यंग ने लिखा, ''किसी व्यक्ति को एक कोरे चट्टान का सुरक्षित अधिकार सौंप दो, वह उसे एक बगीचे में बदल देगा। उसे एक बगीचे को नौ साल के लीज पर दे दो वह उसे रेगिस्तान में बदल देगा'' (मिल द्वारा हवाला दिया गया, वहीं उद्धृत) चरण सिंह समुचित रूप से इसी परंपरा में आते हैं।

संदर्भ

अग्रवाल, एस. के., 1971 इकॉनामिक्स ऑफ लैंड कॉनसोलिडेशन इन इंडिया, एस0 चांद, दिल्ली।

अलावी हमजा, 1973, पीजेन्ट क्लासेज एण्ड प्राइमॉरडियल लॉयल्टीज जनरल ऑफ पीजेन्ट स्टडीज, खण्ड I , नं0 1, अक्टूबर।

अनाम, 1978, दि ग्रेट डिसऑर्डर, *इकोनॉमिक एण्ड पॉलिटिकल वीकली खंड XIII,* अंक 51, 52, 23 से 30 दिसम्बर।

बास्टर क्रेग, 1975, दि राइज एण्ड फाल ऑफ दि बी0के0डी0 इन उत्तर प्रदेश वेनर एण्ड फील्ड्स में (सम्पा0) (1975)

बेते ऐन्द्रे, 1972, पाल्यूशन एण्ड पॉवर्टी, महर में (सं0) (1972)।

बेते ऐन्द्रे, 1974–ए, स्टडीज इन एग्रीकल्चर, दिल्ली ऑक्सफोर्ड युनिवर्सिटी प्रेस।

बेते ऐन्द्रे, 1974–बी, सिक्स ऐसेज इन कॉम्पेरेटिव सोशियोलॉजी, दिल्ली ऑक्सफोर्ड युनिवर्सिटी प्रेस।
भांम्बरी, सी0पी0, 1980, दि जनता पार्टी ए प्रोफाइल, दिल्ली नेशनल पब्लिशिंग हाउस।

भारद्वाज, कृष्णा, 1974, प्रॉडक्शन कंडिशन्स इन इंडियन एग्रीकल्चर, ए स्टडी बेस्ड ऑन फार्म मैनेजमेंट सर्वेज लंदन, कैम्ब्रिज युनिवर्सिटी प्रेस।

बोस अजय, 1987, चैम्पियन ऑफ इंडियन पीजेन्ट्स इज डैड, दि गार्जियन, 30 मई।

बॉटमोर टॉम (सं0), 1983, सम्पादक मंडल– लारेंस हैरिस, वी.जी. कैरनान और राल्फ मिलिबैंड; ए डिक्शनरी ऑफ मार्क्सिस्ट अथॉट ऑक्सफोर्ड बासिल ब्लैकवैल।

ब्रास, पॉल आर., 1965, फंक्शनल पॉलिटिक्स इन एन इंडियन स्टेट; दि काग्रेस पार्टी इन उत्तर प्रदेश, बर्कले और लॉज एन्जलेस, सी0ए0 युनिवर्सिटी ऑफ कैलिफोर्निया प्रेस।

ब्रास, पॉल आर., 1968 उत्तर प्रदेश वेनर (सं0) में (1968)।

ब्रास, पॉल आर., 1980 एस. या नवां दशक 'दि पॉथ्लटिसाइजेशन ऑफ पीजेन्ट्री इन ए नॉर्थ इंडियन स्टेट', भाग. 1, जनरल ऑफ पीजेन्ट स्टडीज खण्ड 7 नं0 4 जुलाई।

ब्रास, पॉल आर., 1980 बी, दि पॉलिटिसाइजेशन ऑफ पीजेन्ट्री इन ए नॉर्थ इंडियन स्टेट, भाग II , जनरल ऑफ पीजेन्ट स्टडीज खंड 8 नं0 1 अक्टूबर।

ब्रास, ऑल आर., 1984, कास्ट फैक्शन एण्ड पार्टी इन इंडियन पॉलिटिक्स खंड. एक, फैक्शन एण्ड पार्टी, दिल्ली चाणक्य पब्लिकेशन्स।

बायर्स, टी.जे., 1972 दि डाइलैक्टिक्स ऑफ इंडियाज ग्रीन रिवोल्यूशन : साउथ एशियन रिव्यू खंड 5 नं0 2, जनवरी।

बायर्स, टी.जे., 1974; लैंड रिफॉर्म, इंडस्ट्रियलाइजेशन एण्ड दि मार्केटेड सरप्लस इन इंडिया, एन ऐस्से ऑन दि पावर ऑफ रूरल वायस लेदमान में (सं0) (1974)।

बायर्स, टी.जे., 1979, ऑफ नियोपॉप्युलिस्ट पाइप–ड्रीम्स : डेडालस थर्ड वर्ल्ड में और दि मिथ ऑफ अरबन वायस *जर्नल ऑफ पीजेन्ट स्टडीज,* खंड 6 नं0 1, जनवरी।

बायर्स, टी.जे., 1981 'दि न्यू टैक्नोलॉजी, क्लास फॉरमेशन एण्ड क्लास एक्शन', इंडियन कन्ट्रीसाइड में *जनरल ऑफ पीजेन्ट स्टडीज,* खण्ड 8 नं0 4, जुलाई।

चड्ढा, जी.के., 1986, *दि स्टेट एण्ड रूरल इकोनॉमिक ट्रांसफॉर्मेशन : दि केस ऑफ पंजाब 1950–85,* सेज पब्लिकेशन नई दिल्ली

चक्रवर्ती, सुखमय, 1987, *डॅवलपमेंट प्लानिंग; दि इंडियन एक्सपीरियंस,* ऑक्सफोर्ड, क्लैरंडन प्रेस।

चौधरी, प्रमित (सं0), 1972, *रीडिंग्स इन इंडियन एग्रीकल्चरल डॅवलपमेंट,* लंदन : हॉर्ज एलन एण्ड अनविन।

चयनोव, ए.वी., 1966, डैनियल थॅर्नर द्वारा सम्पादित, बासिल करब्ले और आर.ई.एफ. स्मिथ, *दि थ्योरी ऑफ पीजेन्ट इकोनॉमी,* होमवुड, आई.एल.; रिचर्ड डी. इरविन अमेरिकन इकोनॉमिक एसोसिएशन के लिए।

क्लिफ्ट, एफ. चार्ल्स, 1982, *'दि इवोल्यूशन ऑफ रूरल डिसपेरिटीज इन एग्रीकल्चरल डॅवलपमेंट इन उत्तर प्रदेश, इंडिया,'* ससेक्स युनिवर्सिटी की अप्रकाशित डी.फिल थीसिस।

डंकन, इयान, 1979, *'दि पॉलिटिक्स ऑफ फूडग्रेन प्रोक्योरमेंट : ए केस स्टडी फ्रॉम नॉर्दर्न इंडिया'* पीजेन्ट सेमिनार, ऑफ दि सैन्टर ऑफ इन्टरनेशनल एण्ड एरिया स्टडीज, सुनिवर्सिटी ऑफ लंदन में पेपर प्रस्तुत, 29 जून (पृष्ठ 78–9, 118)।

द्विवेदी, डी.एन., 1973, *प्रॉब्लम्स एण्ड प्रॉसपैक्ट्स ऑफ एग्रीकल्चरल टैक्सेशन इन उत्तर प्रदेश,* पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली।

एल्डर जोसेफ, 1962, 'लैण्ड कॉनसोलिडेशन इन एन इंडियन विलेज : ए केस स्टडी ऑफ दि कॉन्सोलिडेशन ऑफ होल्डिंग्स एक्ट इन उत्तर प्रदेश', इकोनॉमिक डॅवलपमेंट एण्ड कल्चरल चेंज, खंड XI नं0 1, अक्टूबर।

फिशर, लुई, 1943, 'ए वीक विथ गांधी', लंदन : एलन एण्ड अनविन।

गवर्नमेंट ऑफ इंडिया, मिनिस्ट्री ऑफ फूड एण्ड एग्रीकल्चर (डॅवलपमेंट ऑफ फूड), 1957, *'रिपोर्ट ऑफ दि फूडग्रेन्स इन्क्वायरी कमेटी,'* नई दिल्ली : मैनेजर, गवर्नमेंट ऑफ इंडिया फोटो–लीथे प्रेस।

गवर्नमेंट ऑफ इंडिया, मिनिस्ट्री ऑफ फूड एण्ड एग्रीकल्चर, 1963, *'स्टडीज इन दि इकोनॉमिक्स ऑफ फार्म मैनेजमेंट इन यू.पी. कम्बाइंड रिपोर्ट फॉर दि इयर्स 1954–55 से 1956–57'* दिल्ली : मैनेजर ऑफ पब्लिकेशन्स, गवर्नमेंट ऑफ इंडिया।

गवर्नमेंट ऑफ इंडिया, मिनिस्ट्री ऑफ फूड एण्ड एग्रीकल्चर एण्ड इरीगेशन, 1976, *'रिपोर्ट ऑफ दि नेशनल कमीशन ऑफ एग्रीकल्चर, पार्ट–XV, एग्रेरियन रिफॉर्म्स,'* दिल्ली : दि कन्ट्रोलर ऑफ पब्लिकेशंस, गवर्नमेंट ऑफ इंडिया।

गवर्नमेंट ऑफ यूनाइटेड प्रॉविन्सेज, 1948, *'रिपोर्ट ऑफ दि यूनाइटेड प्रॉविन्सेज जमींदारी एवोल्यूशन कमेटी, वॉल्यूम I'* , इलाहाबाद : सुप्रीन्टेडेन्ट, प्रिंटिंग एण्ड स्टेशनरी, यूनाइटेड प्रॉविन्सेज, इंडिया।

ग्राम्सी, एन्टोनियो, 1971, *'सैलेक्शन्स फ्रॉम दि प्रीजन नोटबुक्स'*, एडीटेड एण्ड ट्रांसलेटेड बाई क्विंटिन होरे एण्ड ज्योफ्रे नोवेल स्मिथ, लंदन : लॉरेन्स एण्ड विशार्ट।

इंडिया इज हू, 1971, नई दिल्ली : इरफान पब्लिकेशन्स।

किरनान, वी.जी., 1983, *'इन्टेलेक्च्युअल्स',* वद बोटमोर (सं0) 1983।

कृष्णा, राज, 1967, 'गवर्नमेंट ऑपरेशन्स इन फूडग्रेन्स', इकोनॉमिक एण्ड पॉलिटिकल वीकली, वॉल्यूम II, न0 37, सितम्बर। चौधरी, पुनर्प्रकाशित (सं0) 1972।

लैडजिंस्की, वुल्फ, 1965, 'दि लैडजिंस्की रिपोर्ट। टेनुरियल कंडीशन्स एण्ड दि पैकेज प्रोग्राम। पार्ट (लुधियाना एवं अलीगढ़), *मेनस्ट्रीम,* वॉल्यूम III, नं0 30, 27 मार्च।

लेहमान, डेविड (सं0), 1974, एग्रेरियन रिफॉर्म एण्ड एग्रेरियन रिफॉर्मिज्म, लंदन : फेबर एण्ड फेबर।

लिप्टन, मिशील, 1968, 'स्ट्रेटिजी फॉर एग्रीकल्चर : अर्बन बॉयस एण्ड रूरल प्लानिंग', स्ट्रीटेन एण्ड लिप्टन (सं0) 1968।

लिप्टन, मिशील, 1977, *'व्हाई पुअर पीपुल स्टे पुअर : ए स्टडी ऑफ अर्बन बॉयस इन वर्ल्ड डॅवलपमेंट,'* लंदन : टेम्प्ल स्मिथ।

महर, जे. मिशील, 1972, 'एजेन्ट्स ऑफ धर्मा इन ए नॉर्थ इंडियन विलेज', इन महर (सं0) 1972।

महर, जे. मिशील (सं0) 1972, *'दि अनटचेबल्स इन कन्टेम्पटरी इंडिया'* , टक्सन, ए.आर. : दि युनिवर्सिटी ऑफ अरिजोना प्रेस।

मार्क्स कार्ल, 1961, *कैपिटल वॉल्यूम 1,* मॉस्को : फॉरेन लैंग्युजेज प्रेस।

मेन्शर जॉन पी., 1972, *'कन्टीन्युटी एण्ड चैंज इन एक्स–अनटचेबल कम्युनिटी ऑफ साउथ इंडिया',* महर (सं0) 1972।

मिल, जॉन स्टुअर्ट, 1891, प्रिंसिपल ऑफ पॉलिटीकल इकोनॉमी, लंदन : लॉगमैन्स, ग्रीन।

मित्रा, अशोक, 1977, 'टर्म्स ऑफ ट्रेड एण्ड क्लास रिलेशन्स, लंदन ' फ्रेंक केस।

मिट्रेनी डेविड, 1930, *'दि लैण्ड एण्ड दि पीजेन्ट्स इन रोमानिया, न्यू हैवन,* सी.टी. एण्ड लंदन : येल युनिवर्सिटी प्रेस एण्ड ऑक्सफोर्ड युनिवर्सिटी प्रेस।

मस्कट, रॉबर्ट जे., 1966, 'डॅवलपमेंट स्ट्रेटिजी इन थाईलैण्ड : ए स्टडी ऑफ इकोनॉमिक ग्रोथ', न्यूयार्क : फ्रेडरिक ए. प्रीजर।

नाइक, जे.ए., 1979, *'फ्रॉम टोटल रिवोल्यूशन टू टोटल फेल्योर',* नई दिल्ली : नेशनल पब्लिशिंग हाउस।

नारायण, धर्म, 1961, *'डिस्ट्रीब्यूशन ऑफ दि मार्केटेड सरप्लस ऑफ एग्रीकल्चरल प्रोड्यूस बाई साइज लेवल ऑफ होल्डिंग इन इडिया',* 1950–51, बॉम्बे : एशिया पब्लिशिंग हाउस।

नेल वाल्टर सी., 1962, *'इकोनॉमिक चैंज इन रूरल इंडिया : लैण्ड टेन्योर एण्ड रिफॉर्म इन उत्तर प्रदेश,'* 1800–1955, न्यू हैवन, सी.टी. एण्ड लंदन : येल युनिवर्सिटी प्रेस।

नेल वाल्टर सी., 1972, *'दि मार्जिनल लेबरर एण्ड दि हरिजन इन रूरल इंडिया',* महर (सं0) 1972।

पारसंस, केन्नथ एच. रेमण्ड जे. पेन एण्ड फिलीप एम. रौप (सं0), 1963, लैण्ड टेन्योर, मैडिसन, डब्ल्यू 1 : युनिवर्सिटी ऑफ विस्कॉनसिन प्रेस।

पार्थसारथी, जी., 1978, 'प्रोलेटेरियनाइजेशन इन इंडियल एग्रीकल्चर : एपाचर्स पेपर', इंडियन जर्नल ऑफ लेबर इकोनॉमिक्स, खंड XXI, नं0 1 और 2, अप्रैल–जुलाई।

पिंग, हो क्वॉन 1979ए, 'रिवोल्ट ऑफ दि लैण्डलेस पीजेन्ट्स', *फार इस्टर्न इकोनॉमिक रिव्यू,* खण्ड 103, नं0 2, 12 जनवरी।

पींग, एच.ओ. नो,1979बी, 'दि राइज ऑफ दि इजिंग सन', *फार ईस्टर्न इकोनॉमिक रिव्यू,* खंड 103, नं0 11, 23 जनवरी।

पींग, एच.ओ. नो, 1979सी, 'सिंह टेक्स दि फर्स्ट स्टेप टू कैपिटलिज्म', *फार ईस्टर्न इकोनॉमिक रिव्यू,* खंड 103, नं0 12, 23 जनवरी।

रंधावा, एम.एस., 1974, *ग्रीन रिवोल्यूशन : ए केस स्टडी ऑफ पंजाब,* दिल्ली : विकास पब्लिशिंग हाउस।

सेन, अमर्त्य, 1962, 'एन अस्पेक्ट ऑफ इंडियन एग्रीकल्चर', *इकोनॉमिक वीकली,* एन्युअल नम्बर, खंड 14, नं0 4–5–6, फरवरी।

सेन, अमर्त्य, 1975, *इम्प्लायमेंट, टेक्नोलॉजी एण्ड डॅवलपमेंट,* लंदन : ऑक्सफोर्ड युनिवर्सिटी प्रेस,

शिल्स, एडवर्ड, 1968, 'इंटेलेक्च्युअल्स', इन सिल्स (सं0) (1968 : खंड 8)।

सिल्स, डेविड एल. (सं0), 1968, इंटरनेशनल एनसाइक्लोपीडिया ऑफ सोशल साइंसेज, 17 खंड, न्यूयार्क एण्ड लंदन : मैकमिलन एण्ड फ्री प्रेस/कॉलियर मैकमिलन।

सिंह, चरन, 1938, 'एग्रीकल्चरल मार्केटिंग, *हिन्दुस्तान टाइम्स,* दिल्ली 31 मार्च एवं 1 अप्रैल।

सिंह, चरन, 1939, 'पीजेन्ट प्रोपराइटरशिप और लैण्ड टू दि वर्कर', *नेशनल हेराल्ड,* लखनऊ, 13 जून।

सिंह, चरन, 1947ए, हाउ टू एबोलिश जमींदारी : व्हिच अल्टरनेटिव सिस्टम टू एडॉप्ट, इलाहाबाद : सुप्रीन्टेंडेंट प्रिंटिंग एण्ड स्टेशनरी, युनाइटेड प्रॉविन्सेज, इंडिया।

सिंह, चरन, 1947बी, *एबोलिशन ऑफ जमींदारी : टू अल्टरनेटिव,* इलाहाबाद, किताबिस्तान।

सिंह, चरन, 1949, एबोलिशन ऑफ जमींदारी इन यू.पी. : क्रिटिसिज्म ऑन्सर्ड, इलाहाबाद : सुप्रीन्टेंडेंट प्रिंटिंग एण्ड स्टेशनरी, युनाइटेड प्रॉविन्सेज, इंडिया। यह लेख इसी शीर्षक से मूल रूप में 16 अगस्त 1949 को लखनऊ से प्रकाशित 'नेशल हेराल्ड' में भी प्रकाशित हुआ। यही लेख 1986 में चौधरी चरण सिंह के 'क्रिटिसिज्म ऑन्सर्ड,' में पुनर्प्रकाशित हुआ।

सिंह, चरन, 1956, व्हिदर कोऑपरेटिव फार्मिंग?, इलाहाबाद : सुप्रीन्टेंडेंट प्रिंटिंग एण्ड स्टेशनरी, उत्तर प्रदेश, इंडिया।

सिंह, चरन, 1958, *एग्रेरियन रिवोल्युशन इन उत्तर प्रदेश,* लखनऊ : सुप्रीन्टेंडेंट प्रिंटिंग एण्ड स्टेशनरी, उत्तर प्रदेश, इंडिया।

सिह, चरन, 1959, *ज्वाइंट फार्मिंग एक्स–रेड : दि प्रोब्लम एण्ड इट्स सोल्युशन,* इलाहाबाद : किताबिस्तान। बाद में 1964 में *'इंडियाज पॉवर्टी एण्ड इट्स सोल्युशन'* नाम से नये संस्करण के रूप में प्रकाशित हुआ।

सिंह, चरन, 1964, *'इंडियाज पॉवर्टी एण्ड इट्स सोल्युशन'* , लंदन : एशिया पब्लिशिंग हाउस। यह *'ज्वाइंट फार्मिंग एक्स–रेड'* का दूसरा संशोधित संस्करण है, जो मूल रूप में 1959 में प्रकाशित हुआ था।

सिंह, चरन, 1970, *'दि स्टोरी ऑफ न्यू कांग्रेस–बी.के.डी. रिलेशंस : हाउ न्यू कांग्रेस ब्रोक दि यू.पी. कौलिशन,'* लखनऊ : बी.के.डी.।

सिंह, चरन, 1978, *'इंडियाज इकोनॉमिक पॉलिसी : दि गांधियन ब्लूप्रिंट'* नई दिल्ली : विकास पब्लिशिंग हाउस।

सिंह, चरन, 1981, *'इकोनॉमिक नाइटमेयर ऑफ इंडिया : इट्स कॉज एण्ड क्योर'* नई दिल्ली : नेशनल पब्लिशिंग हाउस।

सिंह, चरन, 1986, *'लैण्ड रिफॉर्म्स इन यू.पी. एण्ड दि कुलक्स'*, नई दिल्ली : विकास पब्लिशिंग हाउस।

श्रीरामन, एन., 1966, 'ए नोट ऑन कॉन्सोलिडेशन ऑफ होल्डिंग्स इन उत्तर प्रदेश : ए फील्ड सर्वे', *इंडियन जर्नल ऑफ इकोनॉमिक्स,* 46।

स्ट्रीटेन, पॉल एण्ड मिशील लिप्टन (सं0), 1968, 'दि क्राइसिस ऑफ इंडियन प्लानिंग इकोनॉमिक पॉलिसी इन दि 1960ज', लंदन : ऑक्सफोर्ड युनिवर्सिटी प्रेस।

थापर, रोमेश, 1979, 'चरन सिंह दि फाइनेंस मिनिस्ट्री', *इकोनॉमिक एण्ड पॉलिटिकल वीकली,* खंड XIV, नं0 5 एवं 6, 3 एवं 10 फरवरी।

थॉर्नर, डेनियल, 1956, *दि एग्रेरियन प्रॉस्पेक्ट इन इंडिया,* दिल्ली : युनिवर्सिटी प्रेस। इसका दूसरा संस्करण नये प्रस्तावना के साथ नई दिल्ली के एलाइड पब्लिशर्स से 1976 में प्रकाशित हुआ तथा 1981 में पुनर्प्रकाशित हुआ।

त्रिवेदी, के.डी. एवं कमला त्रिवेदी, 1973, 'कॉन्सोलिडेशन ऑफ होल्डिंग्स इन उत्तर प्रदेश : ए स्टडी ऑफ पॉलिसी इम्प्लीमेंटेशन', *जर्नल ऑफ एडमिनिस्ट्रेशन ओवरसीज,* 12

युनाइटेड नेशंस, 1951, *लैण्ड रिफॉर्म्स : डिफैक्ट्स इन एग्रेरियन स्ट्रक्चर एज ऑब्सटेकल टू इकोनॉमिक डॅवलपमेंट,* न्यूयार्क : युनाइटेड नेशंस।

वाजपेयी, धीरेन्द्र कुमार, 1964, 'सम प्रॉब्लम इन लैण्ड कॉन्सोलिडेशन वर्क इन उत्तर प्रदेश', *पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन,* 2।

व्यास, वी.एस. एवं एस.सी. बंधोपाध्याय, 1975, 'नेशनल फूड पॉलिसी इन दि फ्रेमवर्क ऑफ ए नेशनल फूड बजट', *इकोनॉमिक एण्ड पॉलिटिकल वीकली,* खंड X, नं0 13, 29 मार्च।

वाल्श, सर सेसिल, 1929, *'इंडियन विलेज क्राइम्स,* लंदन : एर्नेस्ट बेन।

वीनर, मायरौन (सं0), 1968, *स्टेट पॉलिटिक्स इन इंडिया,* प्रिंग्सटन, न्यूजर्सी : प्रिंग्सटन युनिवर्सिटी प्रेस।

वीनर, मायरौन एवं जॉन ऑसगुड फिल्ड्स (सं0), 1975, इलैक्टोरल पॉलिटिक्स इन दि इंडियन स्टेट्स, खंड IV, दिल्ली: मनोहर बुक सर्विस।

व्हिटकॉम्ब, एलिजाबेथ, 1972, *एग्रेरियन कंडीशंस इन नॉदर्न इंडिया, खंड I, दि युनाइटेड प्रॉविन्सेज अंडर ब्रिटिश रूल,* बर्कले, सी0ए0 : युनिवर्सिटी ऑफ कैलिफोर्निया प्रेस।

विलियम्स, रेमण्ड, 1976, *कीवर्ड्स : ए वॉकेब्यूलरी ऑफ कल्चर एण्ड सोसायटी,* लंदन : फौन्टाना / क्रूम हेल्म

———